تِلْكَ الرُّسُلُ فَضَّلْنَا بَعْضَهُمْ عَلَىٰ بَعْضٍ ۘ مِّنْهُم مَّن كَلَّمَ اللَّهُ ۖ وَرَفَعَ بَعْضَهُمْ دَرَجَاتٍ ۚ وَآتَيْنَا عِيسَى ابْنَ مَرْيَمَ الْبَيِّنَاتِ وَأَيَّدْنَاهُ بِرُوحِ الْقُدُسِ ۗ وَلَوْ شَاءَ اللَّهُ مَا اقْتَتَلَ الَّذِينَ مِن بَعْدِهِم مِّن بَعْدِ مَا جَاءَتْهُمُ الْبَيِّنَاتُ وَلَٰكِنِ اخْتَلَفُوا فَمِنْهُم مَّنْ آمَنَ وَمِنْهُم مَّن كَفَرَ ۚ وَلَوْ شَاءَ اللَّهُ مَا اقْتَتَلُوا

(२५३) यह रसूल हैं, जिनमें से हमने कुछ को कुछ पर श्रेष्ठता दी है।[1] उनमें से कुछ हैं जिनसे अल्लाह (तआला) ने बात की है और कुछ की श्रेणी उच्च की है। और हमने ईसा पुत्र मरियम को चमत्कार प्रदान किये और पवित्र आत्मा से उनका समर्थन कराया।[2] यदि अल्लाह (तआला) चाहता तो उनके बाद वाले अपने पास निशानियाँ आ जाने के पश्चात आपस में कदापि लड़ाई-भिड़ाई न करते, परन्तु उन लोगों ने मतभेद किया, उनमें से कुछ ने विश्वास किया और कुछ विश्वासहीन हुए, और यदि अल्लाह (तआला) चाहता तो

---

[1]क़ुरआन ने एक दूसरे स्थान पर भी इसे वर्णित किया है।

﴿وَلَقَدْ فَضَّلْنَا بَعْضَ النَّبِيِّينَ عَلَىٰ بَعْضٍ﴾ (बनी इस्राईल-५५)

इसलिये इस वास्तविकता में तो कोई शंका नहीं। परन्तु *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया है।

«لا تخيروني من بين الأنبياء»

"तुम मुझे नबियों पर श्रेष्ठता मत दो।" (सहीह बुख़ारी एवं मुस्लिम)

तो इससे एक की दूसरे पर श्रेष्ठता का इंकार आवश्यक नहीं, बल्कि इस उम्मत को नबियों के प्रति आदर-सम्मान की शिक्षा दी गई है। और यह कि तुम्हें चूँकि उन विशेषताओं का, जिनके आधार पर श्रेष्ठता दी गयी है, उनका पूरा ज्ञान नहीं है, इसलिए तुम मेरी भी विशेषताओं की तुलनात्मक व्याख्या न करो, जिससे उन नबियों के सम्मान में कमी हो। वरन् कुछ नबियों की कुछ पर श्रेष्ठता और सभी पैग़म्बरों पर *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की श्रेष्ठता और महानता अहले सुन्नत का विश्वास है, जिनकी सुन्नत की किताबों से पुष्टि होती है। (विस्तृत जानकारी के लिए फ़तहुल क़दीर लिल शौकानी देखिये)

[2]तात्पर्य वह चमत्कार हैं, जो आदरणीय ईसा को प्रदान किये गये थे। जैसे मरे हुए को जिलाना आदि जिसका विवरण सूर: *आले इमरान* में आयेगा। पवित्र आत्मा से तात्पर्य जिब्रील है, जैसाकि पहले भी गुज़र चुका है।

وَلَٰكِنَّ اللَّهَ يَفْعَلُ مَا يُرِيدُ ﴿٢٥٣﴾

यह आपस में न लड़ते ।[1] परन्तु अल्लाह (तआला) जो चाहता है, करता है ।

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا أَنفِقُوا مِمَّا رَزَقْنَاكُم مِّن قَبْلِ أَن يَأْتِيَ يَوْمٌ لَّا بَيْعٌ فِيهِ وَلَا خُلَّةٌ وَلَا شَفَاعَةٌ ۗ وَالْكَافِرُونَ هُمُ الظَّالِمُونَ ﴿٢٥٤﴾

(२५४) हे ईमानवालो ! जो हमने तुम्हें दे रखा है, उसमें से ख़र्च करते रहो । इससे पहले कि वह दिन आये जिस दिन न व्यापार है, न मित्रता और न शिफ़ाअत,[2] और विश्वासहीन ही अत्याचारी हैं ।

---

[1]इस विषय को अल्लाह तआला ने क़ुरआन मजीद में कई स्थान पर वर्णित किया है । इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि अल्लाह तआला के द्वारा उतारे हुए धर्म में अल्लाह की पसन्द मतभेद है । यह अल्लाह को कदापि प्रिय नहीं है । उसकी पसन्द (प्रसन्नता) तो यह है कि सभी मनुष्य उसके द्वारा उतारे गये नियमों का पालन करके नरक की अग्नि से अपने आपको बचायें । इसीलिये उसने कितावें उतारी और नबियों की श्रृंखला स्थापित की । यहां तक कि *नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* पर रिसालत समाप्त कर दी) । फिर भी अपने धर्मराजों, ज्ञानियों तथा धर्म के प्रचारकों के द्वारा सत्य की ओर निमन्त्रण के लिये एवं पुण्य के आदेश एवं पाप के कार्यों से रोकने के लिये एक श्रृंखला अब भी जारी है । इसकी अति आवश्यकता को वर्णित किया गया । किसलिए ? इसलिये कि लोग अल्लाह के प्रिय मार्ग को अपनायें, किन्तु उसने संमार्ग और कुमार्ग बताकर मनुष्य को किसी एक मार्ग पर चलने के लिये बाध्य नहीं किया है, वरन् परीक्षा के लिये उसे अधिकार एवं विचारों की स्वतन्त्रता दी है, इसलिये कोई इस अधिकार का सही प्रयोग करके मुसलमान वन जाता है और कोई इस अधिकार एवं आधीनता का दुरूपयोग करके विश्वासहीन बन जाता है, यह उसकी इच्छा एवं चाहत है, जो उसकी प्रसन्नता से विभिन्न विषय है ।

[2]यहूदी और इसाई कृतघ्न और मिश्रणवादी अपने-अपने प्रमुखों ऋषियों, पुण्यात्माओं, नबियों, महात्माओं, गुरूओं के बारे में यही विश्वास रखते हैं कि अल्लाह तआला पर उनका इतना प्रभाव है कि वह अपने अनुयायियों के लिये जो बात चाहें अल्लाह तआला से मनवा सकते हैं और मनवा लेते हैं । इसी को वह शिफ़ाअत (अभिस्ताव) कहते हैं । अर्थात उनका लगभग वही विश्वास है, जो आजकल के अशिक्षितों का है कि हमारे महात्मा अल्लाह तआला के सामने अड़कर वैठ जायेंगे और क्षमा कराके उठेंगे । इस आयत में बताया गया है कि इस प्रकार के अभिस्ताव का अल्लाह के यहां कोई अस्तित्व नहीं है । फिर इसके वाद आयतुल कुर्सी और दूसरी अन्य आयतों एवं हदीसों में बताया गया कि अल्लाह तआला के यहां एक दूसरी प्रकार का (क्षमादान) सिफ़ारिश होगी, परन्तु यह सिफ़ारिश वही लोग करा सकेंगे, जिन्हें अल्लाह तआला अनुमति देगा और केवल उस भक्त के

اَللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَۚ اَلْحَیُّ الْقَیُّوْمُ ۚ لَا تَاْخُذُهٗ سِنَةٌ وَّلَا نَوْمٌ ؕ لَهٗ مَا فِی السَّمٰوٰتِ وَمَا فِی الْاَرْضِ ؕ مَنْ ذَا الَّذِیْ یَشْفَعُ عِنْدَهٗۤ اِلَّا بِاِذْنِهٖ ؕ یَعْلَمُ مَا بَیْنَ اَیْدِیْهِمْ وَمَا خَلْفَهُمْ ۚ وَلَا یُحِیْطُوْنَ بِشَیْءٍ مِّنْ عِلْمِهٖۤ اِلَّا بِمَا شَآءَ ۚ وَسِعَ كُرْسِیُّهُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ ۚ وَلَا یَـُٔوْدُهٗ حِفْظُهُمَا ۚ وَهُوَ الْعَلِیُّ الْعَظِیْمُ ﴿۲۵۵﴾

(२५५) अल्लाह (तआला) ही सत्य पूज्य है, जिसके सिवाये कोई अराध्य नहीं, जो जीवित है, एवं सबका सहायक आधार है, जिसे न ऊँघ आये न निद्रा उसके आधीन धरती और आकाश की सभी चीज़ें हैं, कौन है, जो उसकी आज्ञा के बिना उसके सामने शिफ़ाअत कर सके, वह जानता है, जो उनके सामने हैं, जो उनके पीछे हैं। और वह उसके ज्ञान में से किसी चीज़ का घेरा नहीं कर सकते, परन्तु वह जितना चाहे।[1] उसकी कुर्सी की परिधि ने धरती और आकाश को घेर रखा है। वह

लिए कर सकेंगे, जिसके लिये अल्लाह तआला आज्ञा प्रदान करेगा और अल्लाह तआला केवल मात्र एकेश्वरवादियों के लिए ही आज्ञा देगा। यह सिफ़ारिश फ़रिश्ते भी करेंगे नबी और रसूल भी, शहीद और पुण्य आत्मा भी, परन्तु अल्लाह पर उन सभी में से किसी का भी, प्रभाव न होगा। इसके विपरीत वह स्वयं अल्लाह तआला के भय से इतने भयभीत होंगे कि उनके चेहरे के रंग उड़े होंगे।

﴿وَلَا يَشْفَعُونَ إِلَّا لِمَنِ ارْتَضَىٰ وَهُم مِّنْ خَشْيَتِهِ مُشْفِقُونَ﴾

"वे उसी के लिये सिफ़ारिश करेंगे जिससे वह प्रसन्न हो, और वह उसके भय से भयभीत रहेंगे।" (सूरह अल-अम्बिया:२८)

[1]यह आयतुल कुर्सी है। सहीह हदीसों में इसका बहुत महत्व वर्णन किया गया है। जैसे यह क़ुरआन की सबसे उच्च आयत है। इसको रात्रि को पढ़ने से शैतान से सुरक्षा रहती है। इसको प्रत्येक नमाज़ के पश्चात पढ़ना चाहिए। (इब्ने कसीर)

कुर्सी से कुछ ने पैर रखने का स्थान, कुछ ने सामर्थ्य, कुछ ने राज्य, और कुछ ने अर्श अर्थ लिया है। परन्तु अल्लाह तआला की महानता एवं विशेषताओं के विषय में मोहद्दिसों (हदीस के ज्ञानी) और पूर्वजों का यही मत है कि अल्लाह तआला की जो विशेषतायें, जिस प्रकार से क़ुरआन और हदीस में वर्णित हैं, उनको बिना किसी तर्क-वितर्क के, उन पर ईमान रखा जाये, इसलिए यही ईमान रखना चाहिए कि वास्तव में कुर्सी है, जोअर्श से भिन्न है। यह किस प्रकार की है, इस पर वह किस प्रकार बैठता है ? इसका वर्णन हम नहीं कर सकते क्योंकि इसकी भौतिकता एवं वास्तविकता के विषय में हमें ज्ञान नहीं है।

अल्लाह (तआला) उनकी सुरक्षा से न थकता है और न ऊबता है। वह तो बहुत महान और बहुत बड़ा है।

(२५६) धर्म के विषय में कोई दबाव नहीं, सत्य-असत्य से अलग हो गया,[1] इसलिये जो

لَآ إِكْرَاهَ فِى ٱلدِّينِ ۖ قَد تَّبَيَّنَ ٱلرُّشْدُ مِنَ ٱلْغَىِّ ۚ فَمَن يَكْفُرْ

[1]इस आयत के उतरने के कारणों को बताया गया कि अंसार के कुछ युवक यहूदी और इसाई हो गये थे, जब यह अंसार मुसलमान हुए, तो उन्होंने अपने युवकों पर (जो उनकी संतानें थीं) जो इसाई अथवा यहूदी हो चुके थे, बल दिया कि वह मुसलमान हो जायें। जिस पर यह आयत उतरी। कुछ व्याख्याकारों ने इसे अहले किताब के लिये विशेष माना है, अर्थात यदि मुसलमानों के राज्य में अहले किताब रहते हैं, यदि वह जिज़या (शरणागत कर) देते हैं, तो उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता। परन्तु यह आयत आदेश के अनुसार सामान्य है, अर्थात किसी को भी इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता। क्योंकि अल्लाह तआला ने संमार्ग और कुमार्ग दोनों को स्पष्ट कर दिया है। परन्तु कुफ़्र और शिर्क के प्रभाव को कम करने के लिये युद्ध तथा बाध्य करना भिन्न बात है। उद्देश्य यह है कि समाज से उस शक्ति को क्षीण और प्रभाव को समाप्त करना है जो अल्लाह के धर्मानुसार कर्म और उसके प्रचार में रूकावट बनती है। ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार चाहे तो कुफ़्र के मार्ग पर चले अथवा इस्लाम धर्म स्वीकार कर ले। चूँकि रूकावट बनने वाली शक्तियाँ समय-समय पर उभरती रहेंगी इसलिये धर्मयुद्ध का आदेश और उसकी आवश्यकता प्रलय तक पड़ती रहेगी। जैसाकि हदीस में है «الجِهَادُ مَاضٍ إِلَىٰ يَوْمِ القِيٰمَةِ» (धर्मयुद्ध क़ियामत तक जारी रहेगा) स्वयं *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने काफ़िरों और मूर्तिपूजकों से धर्मयुद्ध किया है और फ़रमाया :

«أُمِرْتُ أَنْ أُقَاتِلَ النَّاسَ حَتَّىٰ يَشْهَدُوا».

"मुझे आदेश दिया गया है कि मैं लोगों के साथ उस समय तक धर्मयद्ध करूँ, जब तक वह لا إلـــه الا الله और محمد رسول الله को स्वीकार न कर लें।" अल-हदीस (सहीह बुख़ारी, किताबुल ईमान, बाब फ़इन ताबू अव अक़ामुस्सलात)

इसी प्रकार इस्लाम से फिर जाने के दण्ड (हत्या) से भी इस आयत का टकराव नहीं है (जैसाकि कुछ लोग सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं) क्योंकि इस्लाम धर्म से लौटनें पर जो मृत्युदण्ड दिया गया है वह बाध्य करना नहीं है। बल्कि इस्लामी राज्य के विचारों की स्थिति की सुरक्षा है, एक इस्लामी राज्य में काफ़िर को अपने कुफ़्र पर रहने का अधिकार तो अवश्य है, परन्तु यदि वह एक बार इस्लाम धर्म स्वीकार कर ले तो उसे विद्रोह एवं

بِالطَّاغُوتِ وَيُؤْمِنْ بِاللَّهِ فَقَدِ اسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقَىٰ لَا انفِصَامَ لَهَا ۗ وَاللَّهُ سَمِيعٌ عَلِيمٌ ﴿٢٥٦﴾

व्यक्ति अल्लाह (तआला) के अतिरिक्त अन्य देवों को नकार कर अल्लाह (तआला) पर ईमान लाये, उसने मज़बूत कड़े को थाम लिया, जो कभी भी न टूटेगा और अल्लाह (तआला) सुननेवाला, जाननेवाला है।

اللَّهُ وَلِيُّ الَّذِينَ آمَنُوا يُخْرِجُهُم مِّنَ الظُّلُمَاتِ إِلَى النُّورِ ۖ وَالَّذِينَ كَفَرُوا أَوْلِيَاؤُهُمُ الطَّاغُوتُ يُخْرِجُونَهُم مِّنَ النُّورِ إِلَى الظُّلُمَاتِ ۗ أُولَٰئِكَ أَصْحَابُ النَّارِ ۖ هُمْ فِيهَا خَالِدُونَ ﴿٢٥٧﴾

(२५७) ईमानवालों का संरक्षक अल्लाह तआला स्वयं है, वह उन्हें अंधेरे से प्रकाश की ओर निकाल ले जाता है, और काफ़िरों के मित्र शैतान हैं, वह उन्हें प्रकाश से अंधकार की ओर ले जाते हैं। यह लोग नरक के वासी हैं जो सदैव नित्य उसी में पड़े रहेंगे।

أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِي حَاجَّ إِبْرَاهِيمَ فِي رَبِّهِ أَنْ آتَاهُ اللَّهُ الْمُلْكَ إِذْ قَالَ إِبْرَاهِيمُ رَبِّيَ الَّذِي يُحْيِي وَيُمِيتُ قَالَ أَنَا أُحْيِي وَأُمِيتُ ۖ قَالَ إِبْرَاهِيمُ فَإِنَّ اللَّهَ يَأْتِي بِالشَّمْسِ

(२५८) क्या तूने उसे नहीं देखा, जिसने राज्य पाकर इब्राहीम (*अलैहिस्सलाम*) से उसके पालनहार के विषय में विवाद किया जब इब्राहीम ने कहा कि मेरा पोषक तो वह है जो जीवित करता एवं मारता है, वह कहने लगा, मैं भी जिलाता और मारता हूँ, इब्राहीम

विमुखता तथा अवहेलना की आज्ञा नहीं दी जा सकती, अतएव खूब सोच-विचार करके इस्लाम धर्म स्वीकार करे, क्योंकि यदि इसकी आज्ञा दे दी जाती, तोमूल विचारों का यह महल गिर जाता और दुरविचारों की बाढ़ आ जाती जो इस्लामी समाज में शान्ति को तथा राज्य के स्थाईत्व को ख़तरे में डाल सकती थी तथा जिस प्रकार मानवधिकार के नाम पर हत्या, चोरी, बलात्कार तथा डाका डालने की आज्ञा प्रदान नही की जा सकती। उसी प्रकार विचारों की स्वतन्त्रता के नाम पर इस्लामी राज्य में वैचारिक बग़ावत की आज्ञा नहीं दी जा सकती। यह बाध्यता अथवा दबाव नहीं है। बल्कि फिर जाने वाले (मूर्तिद) की हत्या उसी प्रकार न्याय संगत है, जिस प्रकार हत्या तथा चारित्रिक अपराध के करने वालों को कठोर दण्ड देना भी न्याय है। एक का उद्देश्य राज्य की वैचारिक सुरक्षा और दूसरे का उद्देश्य देश की अशान्ति से सुरक्षा है और दोनों उद्देश्य एक राज्य के लिये अति आवश्यक हैं। आज इस्लामी देश इन दोनों उद्देश्यों से विचलित होकर, जिन समस्याओं, अशान्ति और कठिनाईयों में घिरे हुए हैं, उनको बताने की आवश्यकता नहीं।

مِنَ الْمَشْرِقِ فَأْتِ بِهَا مِنَ الْمَغْرِبِ فَبُهِتَ الَّذِي كَفَرَ ۗ وَاللَّهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الظَّالِمِينَ ﴿٢٥٨﴾

(अलैहिस्सलाम) ने कहा अल्लाह (तआला) सूर्य को पूर्व की ओर से ले आता है, तू उसे पश्चिम से ले आ। अब वह काफ़िर आश्चर्य चकित हो गया और अल्लाह (तआला) अत्याचारियों को मार्गदर्शन नहीं देता।

أَوْ كَالَّذِي مَرَّ عَلَىٰ قَرْيَةٍ وَهِيَ خَاوِيَةٌ عَلَىٰ عُرُوشِهَا قَالَ أَنَّىٰ يُحْيِي هَٰذِهِ اللَّهُ بَعْدَ مَوْتِهَا ۖ فَأَمَاتَهُ اللَّهُ مِائَةَ عَامٍ ثُمَّ بَعَثَهُ ۖ قَالَ كَمْ لَبِثْتَ ۖ قَالَ لَبِثْتُ يَوْمًا أَوْ بَعْضَ يَوْمٍ ۖ قَالَ بَل لَّبِثْتَ مِائَةَ عَامٍ فَانظُرْ إِلَىٰ طَعَامِكَ وَشَرَابِكَ لَمْ يَتَسَنَّهْ ۖ وَانظُرْ إِلَىٰ حِمَارِكَ وَلِنَجْعَلَكَ آيَةً لِّلنَّاسِ

(२५९) अथवा उस व्यक्ति के समान जिसका गमन उस बस्ती पर हुआ, जो छत के बल औंधी पड़ी हुई थी, कहने लगा उसकी मृत्यु के बाद अल्लाह (तआला) उसे किस प्रकार जीवित करेगा।[1] तो अल्लाह (तआला) ने उसे सौ वर्ष के लिये मार दिया, फिर उसे (जीवित) उठाया, पूछा, "कितनी अवधि तुझ पर व्यतीत हुई ?" उत्तर दिया कि, "एक दिन अथवा दिन का कुछ भाग।"[2] कहा कि "तू बल्कि सौ वर्ष तक रहा, फिर अब तू अपने भोजन पदार्थ को

---

[1] أو كالذي का सम्बन्ध प्रथम घटना से है और अर्थ है कि आपने (पहली घटना की तरह) उस व्यक्ति की कथा पर विचार नहीं किया, जो एक बस्ती से गुज़रा। यह व्यक्ति कौन था ? इसके विषय में विभिन्न मत व्यक्त किये गये हैं। अधिक प्रसिद्ध नाम आदरणीय उजैर का है। जिसके कुछ सहाबा और ताबईन पक्षधर हैं। والله أعلم इससे पहले की घटना (आदरणीय इब्राहीम व नमरूद) में प्रतिबन्ध अल्लाह तआला का प्रमाण था और इस दूसरी घटना ने उस व्यक्ति को और उसके गधे को सौ वर्ष बाद पुर्नजीवित कर दिया यहाँ तक कि उसकी खाने-पीने की वस्तुओं को भी नष्ट नहीं होने दिया। वही अल्लाह तआला क़ियामत के दिन सभी मनुष्यों को पुर्नजीवित करेगा। जब वह सौ वर्ष पश्चात जीवित कर सकता है, तो फिर हज़ारों वर्ष पश्चात उसके लिये क्या कठिनाई है ? हमारा पूर्ण विश्वास है कि उसे कोई कठिनाई नहीं।

[2] कहा जाता है कि जब वह व्यक्ति मरा था तो थोड़ा दिन चढ़ा था, और जब वह जीवित हुआ तो भी सन्ध्या नहीं हुई थी। तो उसने अनुमान लगाया था कि यदि मैं कल आया था, तो एक दिन बीता अन्यथा दिन का कुछ भाग व्यतीत हुआ है। जबकि वास्तविकता यह है कि इसकी इस घटना की अवधि सौ वर्ष की थी।

وَانْظُرْ إِلَى الْعِظَامِ كَيْفَ نُنْشِزُهَا ثُمَّ نَكْسُوهَا لَحْمًا ۚ فَلَمَّا تَبَيَّنَ لَهُ ۙ قَالَ أَعْلَمُ أَنَّ اللَّهَ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ ﴿٢٥٩﴾

देख कि कदापि नष्ट नहीं हुआ, और अपने गधे को भी देख, हम तुझे लोगों के लिये लक्षण बनाते हैं। तू देख कि हम अस्थियों को किस प्रकार खड़ी करते हैं, फिर उन पर माँस चढ़ाते हैं।" जब यह सब स्पष्ट हो चुका, तो कहने लगा, "मैं जानता हूँ कि अल्लाह (तआला) सर्वशक्तिमान है।"[1]

وَإِذْ قَالَ إِبْرَاهِيمُ رَبِّ أَرِنِي كَيْفَ تُحْيِي الْمَوْتَىٰ ۖ قَالَ أَوَلَمْ تُؤْمِنْ ۖ

(२६०) और जब इब्राहीम (*अलैहिस्सलाम*) ने कहा, "हे मेरे प्रभु ! मुझे दिखा कि तू मृतक को किस प्रकार जीवित करेगा ?"[2] अल्लाह (तआला)

---

[1]अर्थात विश्वास तो मुझे पहले भी था, परन्तु अब आँखों से देखकर विश्वास एवं ज्ञान में और दृढ़ता आ गयी है।

[2]यह जीवन-मृत्यु की दूसरी घटना है, जो एक परम आदरणीय पैग़म्बर माननीय इब्राहीम अलैहिस्सलाम की इच्छा और उनके दिल की सन्तुष्टि के लिये दिखायी गयी। चार पक्षी कौन-कौन थें ? व्याख्याकारों ने विभिन्न नाम बताये हैं, परन्तु नामों के निर्धारण से कोई लाभ नहीं इसलिये अल्लाह ने भी उनके नामों का वर्णन नहीं किया। बस यह चार विभिन्न पक्षी थे فصرهن का एक अर्थ أملهن किया गया है, अर्थात उनको "*हिलाले*" (परिचित करा लें) ताकि जीवित होने के बाद उनको सरलता से पहचान सकें कि यह वही पक्षी हैं और किसी प्रकार की शंका शेष न रह जाये। इस अर्थ के आधार पर यह मानना पड़ेगा कि ثم قطعهن (फिर उनके टुकड़े-टुकड़े कर लो) छिपा हुआ है दूसरा अर्थ قطعهن (टुकड़े-टुकड़े कर ले) किया गया है। इस स्थिति में बिना छिपा हुआ मान कर अर्थ स्पष्ट हो जाता है। अर्थ यह है कि टुकड़े-टुकड़े करके विभिन्न पहाड़ों पर इनके भाग मिलाकर रख दे, फिर तुम आवाज़ दोगे तो वह जीवित होकर तुम्हारे पास आ जायेंगे। अत: ऐसा ही हुआ। कुछ आधुनिक एवं प्राचीन व्याख्याकार जो सहाबा और ताबईन की व्याख्या तथा महात्माओं (सलफ़) के विचार और नियमों को विशेषता नहीं देते فصرهن का अनुवाद "परिचित करा ले" का किया है। और उनके टुकड़े-टुकड़े करने और पहाड़ों पर उनके भाग बिखेरने को और फिर अल्लाह की शक्ति से उनको जुड़ने को वह स्वीकार नहीं करते। परन्तु यह व्याख्या सही नहीं है। इससे घटना का सारा सम्मान समाप्त हो जाता है। और मरे को जीवित करने का प्रश्न ज्यों का त्यों बना रहता है। यद्यपि इस घटना के वर्णन का उद्देश्य अल्लाह तआला की महान शक्ति जीवन-मरण पर उसका पूर्णरूप से

ने कहा "क्या तुम्हें ईमान नहीं ?" उत्तर दिया, "ईमान तो है, परन्तु मेरे दिल को संतोष हो जायेगा ।" कहा, "चार पक्षी लो, उनके टुकड़े कर डालो, फिर हर पर्वत पर उनका एक-एक भाग रख दो, फिर उन्हें पुकारो तुम्हारे पास दौड़ते हुए आ जायेंगे ।" और जान रखो, कि अल्लाह (तआला) सर्वशक्तिशाली एवं सर्वज्ञानी है ।

قَالَ بَلٰى وَلٰكِنْ لِّيَطْمَىِٕنَّ قَلْبِىْ ؕ قَالَ فَخُذْ اَرْبَعَةً مِّنَ الطَّيْرِ فَصُرْهُنَّ اِلَيْكَ ثُمَّ اجْعَلْ عَلٰى كُلِّ جَبَلٍ مِّنْهُنَّ جُزْءًا ثُمَّ ادْعُهُنَّ يَاْتِيْنَكَ سَعْيًا ؕ وَاعْلَمْ اَنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ﴿۲۶۰﴾

(२६१) जो लोग अल्लाह (तआला) के मार्ग में अपना माल ख़र्च करते हैं, उनकी समानता उस दाने जैसी है, जिसमें से सात बालियाँ निकलें और हर बाली में सौ दाने हों, और अल्लाह (तआला) जिसे चाहे कई गुना दे ।[1]

مَثَلُ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ كَمَثَلِ حَبَّةٍ اَنْۢبَتَتْ سَبْعَ سَنَابِلَ فِىْ كُلِّ سُنْۢبُلَةٍ مِّائَةُ حَبَّةٍ ؕ وَاللّٰهُ يُضٰعِفُ لِمَنْ يَّشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ﴿۲۶۱﴾

प्रभाव का प्रमाण है एक हदीस में है कि *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने आदरणीय इब्राहीम की इस घटना का वर्णन करके फ़रमाया :

«نَحْنُ أَحَقُّ بِالشَّكِّ مِنْ إِبْرَاهِيمَ»

"हम इब्राहीम से अधिक शंका के अधिकारी हैं ।" (सहीह बुख़ारी किताबुत तफ़सीर)

इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि इब्राहीम ने शंका की अतः हमें उनसे और अधिक शंका का अधिकार पहुँचता है । बल्कि अर्थ यह है कि आदरणीय इब्राहीम से शंका का निस्तारण है अर्थात इब्राहीम ने जीवन-मृत्यु की समस्या पर शंका नहीं की, यदि उन्होंने शंका का प्रदर्शन किया होता, तो हम अवश्य शंका करनें में उनसे अधिक अधिकारी होते । (और जानकारी के लिये देखिये फ़तहुल क़दीर, अल-शौकानी)

[1]यह अल्लाह के मार्ग में दान देने की श्रेष्ठता है । इससे तात्पर्य यदि धर्मयुद्ध है, तो इसके अर्थ यह होंगे कि धर्मयुद्ध में व्यय किये गये धन का पुण्य यह होगा । और यदि इससे तात्पर्य सभी पुण्य के लिये व्यय किया गया धन है, तो यह श्रेष्ठता व्यय तथा दान जो स्वेच्छा से अल्लाह के मार्ग में किया गया होगा और अन्य पुण्य. «الحَسَنَةُ بِعَشْرِ أَمْثَالِهَا»(एक पुण्य का बदला दस गुना है) की परिधि में आयेगी । (फ़तहुल क़दीर) अर्थात अल्लाह के मार्ग में व्यय किये गये धन की महत्ता एवं विशेषता का कारण स्पष्ट है कि जब तक सामान और

और अल्लाह (तआला) महान व्यापक एवं ज्ञाता है ।

(२६२) जो लोग अपना धन अल्लाह (तआला) के मार्ग में ख़र्च करते हैं, फिर उसके पश्चात उपकार नहीं जताते और न कष्ट देते हों ।[1] उनका फल उनके प्रभु के पास है, उन पर न तो कोई भय है न वह उदास होंगे ।

اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ثُمَّ لَا يُتْبِعُوْنَ مَآ اَنْفَقُوْا مَنًّا وَّلَآ اَذًى ۙ لَّهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿٢٦٢﴾

(२६३) कोमल वचन कहना और क्षमा करना उस दान से उत्तम है, जिसके पश्चात दुख दिया जाये ।[2] और अल्लाह (तआला) निस्पृह एवं सहनशील है ।

قَوْلٌ مَّعْرُوْفٌ وَّمَغْفِرَةٌ خَيْرٌ مِّنْ صَدَقَةٍ يَّتْبَعُهَآ اَذًى ۗ وَاللّٰهُ غَنِيٌّ حَلِيْمٌ ﴿٢٦٣﴾

हथियार का युद्ध के लिये प्रबन्ध न होगा, सेना का कार्य भी शून्य होगा । सामान और हथियार बिना धन के एकत्रित नहीं किये जा सकते ।

[1]अल्लाह के मार्ग मे धन व्यय करने की श्रेष्ठता का जो वर्णन गुज़र चुका है, केवल उस व्यक्ति को प्राप्त हो सकेगा, जो माल व्यय करने के पश्चात उपकार न जताये, और मुख से ऐसे शब्द न कहे जिससे किसी निर्धन के सम्मान को ठेस पहुँचे और उसको कष्ट का आभास हो । यह इतना बड़ा अपराध है कि *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया :

"क़ियामत के दिन अल्लाह तआला तीन प्रकार के व्यक्तियों से बात नहीं करेगा उनमें एक उपकार जताने वाला है ।" (मुस्लिम, किताबुल ईमान)

[2]भिक्षुक से कोमल वचन में बोलना तथा प्रार्थना रूपी वाक्य (अल्लाह तुम को भी और मुझे भी अन्य कृपा और दया प्रदान करे आदि) से उत्तर देना उचित कथन है । مغفرة का अर्थ है कि भिखारी और उसकी आवश्यकता को लोगों के समक्ष प्रदर्शित करने से रूकना तथा उसको छुपाना है । और यदि भिखारी के मुख से कोई अनुचित शब्द निकल भी जाये, तब भी उसके अनसुनी करना भी इसमें सम्मिलित है । अर्थात भिखारी को दान देने के वजाय उससे कोमल वचन बोलना, उसकी बात का अनसुनी करना तथा उसको छिपाना अच्छा है, जिसके बाद उसे लोगों के सामने अपमान का सामना न करना पड़े तथा उसके दिल को कष्ट न हो । इसलिये हदीस में कहा गया है «الْكَلِمَةُ الطَّيِّبَةُ صَدَقَةٌ» (कोमल वचन भी दान है) और अपने भाई से नम्रता से मिलना उचित अर्थात भलाई है । «وَإِنَّ مِنَ الْمَعْرُوفِ أَنْ تَلْقَىٰ أَخَاكَ بِوَجْهٍ طَلْقٍ» (सहीह मुस्लिम उदघृत फ़तहुल क़दीर)

يَٰٓأَيُّهَا ٱلَّذِينَ ءَامَنُوا۟ لَا تُبْطِلُوا۟ صَدَقَٰتِكُم بِٱلْمَنِّ وَٱلْأَذَىٰ كَٱلَّذِى يُنفِقُ مَالَهُۥ رِئَآءَ ٱلنَّاسِ وَلَا يُؤْمِنُ بِٱللَّهِ وَٱلْيَوْمِ ٱلْءَاخِرِ ۖ فَمَثَلُهُۥ كَمَثَلِ صَفْوَانٍ عَلَيْهِ تُرَابٌ فَأَصَابَهُۥ وَابِلٌ فَتَرَكَهُۥ صَلْدًا ۖ لَّا يَقْدِرُونَ عَلَىٰ شَىْءٍ مِّمَّا كَسَبُوا۟ ۗ وَٱللَّهُ لَا يَهْدِى ٱلْقَوْمَ ٱلْكَٰفِرِينَ ﴿٢٦٤﴾

(२६४) हे ईमानवालो ! अपने दान को उपकार जताकर और दुख पहुँचाकर व्यर्थ न करो, जिस प्रकार से वह व्यक्ति जो अपना धन दिखावे के लिये ख़र्च करे और न अल्लाह (तआला) पर ईमान रखे और न प्रलय पर, उसकी उपमा उस चिकने पत्थर की है, जिस पर थोड़ी सी मिट्टी हो, फिर उसपर ज़ोरदार वर्षा हो और वह उसे बिल्कुल स्वच्छ और कठोर छोड़ दे ।[1] इन पाखण्डियों को अपनी कमाई से कोई चीज़ हाथ नहीं लगती और अल्लाह (तआला) काफ़िरों के समुदाय को मार्गदर्शन नहीं देता ।

وَمَثَلُ ٱلَّذِينَ يُنفِقُونَ أَمْوَٰلَهُمُ ٱبْتِغَآءَ مَرْضَاتِ ٱللَّهِ وَتَثْبِيتًا مِّنْ أَنفُسِهِمْ كَمَثَلِ جَنَّةٍۭ بِرَبْوَةٍ أَصَابَهَا وَابِلٌ فَـَٔاتَتْ أُكُلَهَا

(२६५) उन लोगों की उपमा जो अपना माल अल्लाह (तआला) की प्रसन्नता की प्राप्ति के लिए खुशी दिल से और विश्वास के साथ ख़र्च करते हैं, उस बाग़ जैसी है जो ऊँची धरती पर हो ।[2] और ज़ोरदार वर्षा से अपना फल

---

[1]इस आयत में यह कहा गया है कि, दान व पुण्य करके, उपकार करके, जताना और कष्टदायक बातें करना ईमानवालों को शोभा नहीं देते, बल्कि उन लोगों की आदत है, जो मुनाफ़िक़ (अवसरवादी) हैं वह देखावे के लिये ख़र्च करते हैं । दूसरे ऐसे व्यय करने की तुलना ऐसी है कि जैसे पत्थर की चट्टान पर मिट्टी जम जाये और कोई उसमें बीज बो दे और उसके पश्चात वर्षा का एक झोंका आये, तो सब कुछ बह जाये और वह पत्थर मिट्टी से बिल्कुल साफ़ हो जाये । अर्थात जिस प्रकार वह वर्षा उस पत्थर के लिये लाभप्रद नहीं हुई उसी प्रकार दिखावे का दान भी उसको कोई लाभ नहीं पहुँचा सकेगा ।

[2]यह उन ईमानवालों की शोभा है, जो अल्लाह तआला को प्रसन्न करने के लिये व्यय करते हैं । इनका ख़र्च उस बाग़ के समान है, जोअत्यधिक ऊँचाई पर हो, कि यदि अधिक वर्षा हो, तो अपने फल दुगने कर सके और यदि वर्षा न हो, तो फुहार तथा ओस ही उसके लिये पर्याप्त है । इस प्रकार के दान भी, चाहे कितने कम क्यों न हों, परन्तु अल्लाह के यहाँ कई-कई गुना उनका बदला तथा पुण्य होगा । جنة उस धरती को कहते हैं, जिस पर इतनी अधिकता में वृक्ष हों कि वह धरती को ढाक लें अथवा बाग़ जिनके चारों ओर इतनी घनी झाड़ हो कि बाग़ दृष्टि से ओझल हो जाये । यह जिन्न शब्द से

ضِعْفَيْنِ ۚ فَإِنْ لَّمْ يُصِبْهَا وَابِلٌ فَطَلٌّ ۗ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ۝

दुगना लादे और यदि उस पर वर्षा न भी हो, तो फुहार ही काफ़ी है, और अल्लाह (तआला) तुम्हारे कर्मों को देख रहा है।

اَيَوَدُّ اَحَدُكُمْ اَنْ تَكُوْنَ لَهٗ جَنَّةٌ مِّنْ نَّخِيْلٍ وَّاَعْنَابٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ۙ لَهٗ فِيْهَا مِنْ كُلِّ الثَّمَرٰتِ ۙ وَاَصَابَهُ الْكِبَرُ وَلَهٗ ذُرِّيَّةٌ ضُعَفَآءُ ۚ فَاَصَابَهَآ اِعْصَارٌ فِيْهِ نَارٌ فَاحْتَرَقَتْ ۗ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ

(२६६) क्या तुममें से कोई भी यह चाहता है कि उसके खजूरों और अंगूरों के बाग़ हों, जिसमें नहरें बह रही हों और हर प्रकार के फल व्याप्त हों, उस व्यक्ति की वृद्धावस्था आ गयी हो, उसके नन्हें-नन्हें बच्चे भी हों और अचानक बाग़ को बगुला लग जाये जिसमें अग्नि भी हो। जिससे बाग़ जल जाये।[1] इसी प्रकार अल्लाह (तआला) तुम्हारे लिए निशानियाँ

लिया गया है। जिन्न उस सृष्टि को कहते हैं, जोआँखों को नहीं दिखाई देती। गर्भ में बच्चे को जनीन कहा जाता है क्योंकि वह भी दिखाई नहीं देता। उन्माद को जुनून कहा गया है क्योंकि इसमें भी बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है और जन्नत (स्वर्ग) को जन्नत कहते हैं कि यह दृष्टिगोचर नहीं है। ربوة ऊँची धरती को कहते हैं। وابل तेज वर्षा को कहते हैं।

[1]इसी आडम्बर की हानि को स्पष्ट करने और उससे बचने के लिये और उदाहरण दिया जा रहा है कि एक व्यक्ति का बाग़ हो, जिसमें हर प्रकार के फल हों (अर्थात उससे अधिक लाभ की आशा हो) वह व्यक्ति बूढ़ा हो जाये और उसके छोटे-छोटे बच्चे हों (अर्थात वह अपनी वृद्धावस्था के कारण मेहनत न कर सके और उसकी संतान भी उसके बुढ़ापे की सहारा तो क्या, स्वयं अपना बोझ न उठाने के योग्य हो) इस स्थिति में तेज गति की आँधी आये और उसका बाग़ जल जाये। अब तो न वह स्वयं पुनः बाग़ लगाने की स्थिति में रहा और न उसकी संतान। यही स्थिति आडम्बर के लिये ख़र्च करने वालों का क़ियामत वाले दिन होगी। पाखण्ड एवं आडम्बर के कारण उनके सारे कर्म व्यर्थ चले जायेंगे। जबकि वहाँ पुण्य की अति आवश्यकता होगी। और पुनः सत्कर्म करने का समय नहीं मिलेगा अल्लाह तआला फ़रमाता है कि क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारा यही हाल हो ? आदरणीय इब्ने अब्बास ने इस उदाहरण का लक्ष्य उन लोगों को भी बताया है, जोजीवन भर पुण्य का कार्य करते रहे, परन्तु वृद्धावस्था में शैतान के जाल में फँसकर अल्लाह के अवज्ञाकारी बन जाते हैं, जिससे जीवन भरके पुण्य बर्बाद हो जाते हैं। (सहीह बुख़ारी उदघृत फ़तहुल क़दीर तथा इब्ने कसीर)

لَعَلَّكُمْ تَتَفَكَّرُونَ ﴿٢٦٦﴾

का वर्णन करता है, ताकि तुम विचार कर सको।

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا أَنفِقُوا مِن طَيِّبَاتِ مَا كَسَبْتُمْ وَمِمَّا أَخْرَجْنَا لَكُم مِّنَ الْأَرْضِ وَلَا تَيَمَّمُوا الْخَبِيثَ مِنْهُ تُنفِقُونَ وَلَسْتُم بِآخِذِيهِ إِلَّا أَن تُغْمِضُوا فِيهِ وَاعْلَمُوا أَنَّ اللَّهَ غَنِيٌّ حَمِيدٌ ﴿٢٦٧﴾

(२६७) हे ईमानवालो ! अपनी पवित्र आय में से और धरती में से तुम्हारे लिये हमारी निकाली हुई चीजों में से ख़र्च करो।[1] उनमें से बुरी चीजो कोख़र्च करने का विचार न करना, जिसे तुम स्वयं लेने वाले नहीं हो, हाँ, यदि आँखें बन्द कर लो तो।[2] और जान लो अल्लाह (तआला) निस्पृह और प्रशंसित है।

الشَّيْطَانُ يَعِدُكُمُ الْفَقْرَ وَيَأْمُرُكُم بِالْفَحْشَاءِ وَاللَّهُ يَعِدُكُم

(२६८) शैतान तुम्हें निर्धनता से डराता है, और अशिष्टता का आदेश देता है।[3] और

[1]दान को स्वीकार करने के लिए आवश्यक है कि उपकार और आडम्बर से शुद्ध हो (जैसाकि पिछली आयतों में बताया जा चुका है) उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि वह उचित एवं शुद्ध कमाई से हो। चाहे वह कारोबार (व्यापार अथवा उद्योग) के द्वारा हो अथवा कृषि और बाग़ों की पैदावार से। और यह फ़रमाया कि "अपवित्र चीजों को दान करने की चेष्टा न करो।" तो अपवित्र चीजों से तात्पर्य उन चीजों से है जो अवैध कमाई से हों। अल्लाह तआला उसे स्वीकार नहीं करता। हदीस में है «إِنَّ اللهَ طَيِّبٌ لَا يَقْبَلُ إِلَّا طَيِّبًا» (अल्लाह तआला पवित्र है और वह पवित्र चीज़ों को स्वीकार करता है)। दूसरे अपवित्र के अर्थ बेकार और प्रयोग में न आने वाली चीज़ों के है। बेकार चीज़ें भी अल्लाह के मार्ग में न ख़र्च करो। जैसाकि आयत ﴿لَن تَنَالُوا الْبِرَّ حَتَّىٰ تُنفِقُوا مِمَّا تُحِبُّونَ﴾ का भी लाभ है। इसके उतरने के कारण में बताया गया है कि मदीना के कुछ अंसार ख़राब, न प्रयोग में न आने वाली खजूरों को दान स्वरूप मस्जिद में दे जाते, जिस पर यह आयत उतरी। (फ़तहुल क़दीर उदघृत त्रिमिजी व इब्ने माजा आदि)

[2]अर्थात जिस प्रकार से तुम स्वयं बेकार चीजे लेना अच्छा नहीं समझते, उसी प्रकार अल्लाह के मार्ग में अच्छी चीज़ ही ख़र्च करो।

[3]अर्थात यदि पुण्य के कार्य में धन व्यय करना हो, तो शैतान यह भय उत्पन्न कराता है कि इससे तुम निर्धन एवं भिखारी हो जाओगे। परन्तु बुरे कार्यों में व्यर्थ करने में ऐसे विचारों को निकट नहीं आने देता बल्कि उन बुरे कार्यों को इस प्रकार बना-सँवार के प्रस्तुत करता है कि उनके लिए छिपी हुई इच्छायें इस प्रकार जाग जाती हैं कि उन पर मनुष्य बड़े से बड़ा धन व्यय कर डालता है। इसलिए देखा गया है कि मस्जिद, मदरसे और

مَّغْفِرَةً مِّنْهُ وَفَضْلًا ۗ وَاللَّهُ وَاسِعٌ عَلِيمٌ ﴿٢٦٨﴾

अल्लाह (तआला) तुमको अपनी क्षमा और कृपा का वचन देता है। अल्लाह (तआला) अति दयालु एवं सर्वज्ञ है।

يُؤْتِي الْحِكْمَةَ مَن يَشَاءُ ۚ وَمَن يُؤْتَ الْحِكْمَةَ فَقَدْ أُوتِيَ خَيْرًا كَثِيرًا ۗ وَمَا يَذَّكَّرُ إِلَّا أُولُو الْأَلْبَابِ ﴿٢٦٩﴾

(२६९) वह जिसे चाहे ज्ञान, बुद्धि देता है। और जिसे बुद्धिमता दे दिया गया। उसे बहुत सारी भलाई दी गयी।[1] और शिक्षा केवल बुद्धिमान ही प्राप्त करते हैं।

وَمَا أَنفَقْتُم مِّن نَّفَقَةٍ أَوْ نَذَرْتُم مِّن نَّذْرٍ فَإِنَّ اللَّهَ يَعْلَمُهُ ۗ وَمَا لِلظَّالِمِينَ مِنْ أَنصَارٍ ﴿٢٧٠﴾

(२७०) तुम चाहे जितना ख़र्च करो (अर्थात दान करो) और जो कुछ मनौती मानो,[2] उसे अल्लाह (तआला) जानता है और अत्याचारियों का कोई सहायक नहीं।

किसी अन्य पुण्य के कार्य के लिये यदि कोई अनुदान के लिये पहुँच जाये तो, धनवान लोग सौ, दो सौ के लिये कई बार अपने लेखा-जोखा की देख पड़ताल करते हैं, और माँगने वाले लम्बे समय तक प्रतीक्षा करके कभी-कभी कई-कई बार दौड़ते हैं। परन्तु यही व्यक्ति सिनेमा, टेलीविजन, शराब, कुकर्मों, मुक़दमे आदि पर तो अपना धन बिना सोचे समझे ख़र्च करता है और इससे किसी प्रकार का संकोच व हिचकिचाहट का प्रदर्शन नहीं होता।

[1]बुद्धिमत्ता कुछ के निकट समझ-बूझ व ज्ञान, कुछ के निकट अच्छी सलाह, क़ुरआन द्वारा रोकी गई बातों का ज्ञान व समझ, निर्णायक शक्ति और कुछ के निकट केवल किताब व सुन्नत का ज्ञान व समझ है अथवा यह सभी मत उसकी परिधि में सम्मिलित हो सकते हैं। सहीहैन कि.एक हदीस में है कि दो व्यक्तियों पर प्रतिस्पर्धा उचित है, एक वह जिसको अल्लाह ने धन दिया और वह उसे अल्लाह के मार्ग में व्यय करता है। दूसरा वह जिसे अल्लाह ने बुद्धिमत्ता प्रदान की, जिससे वह निर्णय करता है और लोगों को उसकी शिक्षा देता है। (सहीह बुख़ारी किताबुल इल्म)

[2]मनौती का अर्थ है कि मेरा अमुक कार्य हो गया अथवा अमुक दु:ख निवारण हो जायेगा, तो मैं अल्लाह के मार्ग में इतना दान करूँगा। इस मनौती को पूरा करना आवश्यक है। यदि किसी अवैज्ञा अथवा अनुचित कार्य की मनौती मानी है, तोउसे पूरी करना आवश्यक नहीं है। मनौती भी नमाज़ और रोज़े की तरह वंदना है। इसलिये अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की मनौती मानना उसकी पूजा है, जो शिर्क है, जैसाकि आजकल प्रसिद्ध मज़ारों पर मनौती और चढ़ाव का यह कार्य सामान्य है। अल्लाह तआला इस शिर्क से बचाये।

(२७१) यदि तुम दान-पुण्य को प्रकट करो, तो वह भी अच्छा है, और यदि तुम उसे छिपा कर निर्धनों को दे दो, यह तुम्हारे लिये श्रेष्ठकर है ।[1] अल्लाह (तआला) तुम्हारे पापों को समाप्त कर देगा और अल्लाह (तआला) तुम्हारे सभी कर्मों से सूचित है ।

إِن تُبْدُوا الصَّدَقَاتِ فَنِعِمَّا هِيَ ۖ وَإِن تُخْفُوهَا وَتُؤْتُوهَا الْفُقَرَاءَ فَهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ۚ وَيُكَفِّرُ عَنكُم مِّن سَيِّئَاتِكُمْ ۗ وَاللَّهُ بِمَا تَعْمَلُونَ خَبِيرٌ ﴿٢٧١﴾

(२७२) उन्हें सत्यमार्ग पर ला खड़ा करना तुम्हारे अधिकार में नहीं, बल्कि मार्गदर्शन अल्लाह (तआला) देता है, जिसे चाहता है, और तुम जो भली वस्तु अल्लाह के मार्ग में दोगे उसका लाभ स्वयं पाओगे । तुम्हें मात्र अल्लाह (तआला) की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये ख़र्च करना चाहिये । तुम जो कुछ माल ख़र्च करोगे उसका पूरा-पूरा बदला तुम्हें दिया जायेगा ।[2] और तुम्हारा अधिकार न मारा जायेगा ।

لَّيْسَ عَلَيْكَ هُدَاهُمْ وَلَٰكِنَّ اللَّهَ يَهْدِي مَن يَشَاءُ ۗ وَمَا تُنفِقُوا مِنْ خَيْرٍ فَلِأَنفُسِكُمْ ۚ وَمَا تُنفِقُونَ إِلَّا ابْتِغَاءَ وَجْهِ اللَّهِ ۚ وَمَا تُنفِقُوا مِنْ خَيْرٍ يُوَفَّ إِلَيْكُمْ وَأَنتُمْ لَا تُظْلَمُونَ ﴿٢٧٢﴾

[1]इससे ज्ञात हुआ कि सामान्य स्थिति से छिपाकर दान करना श्रेष्ठ है, सिवाय इसके कि किसी विशेष परिस्थिति में बताकर दान करने से अन्य व्यक्तियों को शिक्षा देना है । यदि आडम्बर की सम्भावना न हो, तो इस कार्य में प्राथमिकता दिखाने वाले जो श्रेष्ठता प्राप्त कर सकते हैं । वह हदीसों से स्पष्ट है । इस प्रकार के विशिष्ट परिस्थितियों के अतिरिक्त गुप्तदान ही श्रेष्ठ है । *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया : कि जिन व्यक्तियों को क़ियामत के दिन अर्श-ए-इलाही की छाया का सौभाग्य प्राप्त होगा, उनमें एक व्यक्ति वह भी होगा जिसने इस प्रकार से गुप्तदान किया होगा कि उसके बायें हाथ को ख़बर न होगी कि उसके दाहिने हाथ ने क्या ख़र्च किया है । दान में गुप्त रखने की श्रेष्ठता को कुछ आलिमों ने स्वेच्छात्मक दान तक सीमित रखा है, परन्तु ज़कात (निर्धारित दान) को स्पष्ट करने को श्रेष्ठ समझा है । परन्तु क़ुरआन की मान्यता अनिवार्य तथा स्वेच्छात्मक दोनों दान को सम्मिलित है । (इब्ने कसीर) और हदीस का भावार्थ भी इसका पक्षधर है ।

[2]व्याख्या के वृतान्त में इसके उतरने का कारण यह वर्णित किया गया है कि मुसलमान अपने मूर्तिपूजक सम्बन्धियों की सहायता करना उचित नहीं समझते थे और वह चाहते

لِلْفُقَرَاءِ الَّذِينَ أُحْصِرُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ لَا يَسْتَطِيعُونَ ضَرْبًا فِي الْأَرْضِ يَحْسَبُهُمُ الْجَاهِلُ أَغْنِيَاءَ مِنَ التَّعَفُّفِ تَعْرِفُهُم بِسِيمَاهُمْ لَا يَسْأَلُونَ النَّاسَ إِلْحَافًا وَمَا تُنفِقُوا مِنْ خَيْرٍ فَإِنَّ اللَّهَ بِهِ عَلِيمٌ ﴿٢٧٣﴾

(२७३) दान के पात्र केवल वह निर्धन हैं, जो अल्लाह के मार्ग में रोक दिये गये, जो देश में चल-फिर नहीं सकते ।[1] मूर्ख लोग उनके प्रश्न न करने के कारण उन्हें धनवान समझते हैं, आप उनके मुख को देखकर, ज्ञान से उन्हें पहचान लेंगे, वह लोगों से चिमटकर भीख नहीं माँगते ।[2] तुम जो कुछ धन ख़र्च करो अल्लाह (तआला) उसका जाननेवाला है ।

थे कि वह भी मुसलमान हो जायें । अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि मार्गदर्शन देना यह केवल अल्लाह के अधिकार में है । दूसरी बात यह फ़रमायी कि तुम अल्लाह की प्रसन्नता के लिये जो कुछ भी ख़र्च करोगे उसका पूरा बदला तुम्हें मिलेगा । इससे यह ज्ञात हुआ कि जो सम्बन्धी मुसलमान नहीं हैं उनके साथ भी नम्रता का बर्ताव करना पुण्य का कार्य है । परन्तु ज़कात केवल मुसलमान का अधिकार है, इसे किसी भी अन्य व्यक्ति को नहीं दिया जा सकता, जो मुसलमान न हो ।

[1]इससे तात्पर्य वह मुहाजिर हैं, जो मक्का से मदीना आये और अल्लाह के मार्ग में आने के कारण उनकी प्रत्येक चीज़ छूट गयी । इस परिधि में धर्म की शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी और आलिम (धार्मिक शिक्षक) भी आते हैं ।

[2]अर्थात जो ईमानवाले हैं, उनकी विशेषता यह है कि वह निर्धनता एवं गरीबी की परिस्थिति में किसी के समक्ष हाथ फैलाकर भिक्षा माँगने से कतराते हैं । तथा किसी से चिमट कर कदापि प्रश्न नहीं करते । (चूँकि इसकी पहली विशेषता प्रश्न करने से कतराना है । (फ़तहुल क़दीर) और कुछ ने कहा कि वह भिक्षा के समय रोना-धोना नही करते और जिन वस्तुओं की उन्हें आवश्यकता नहीं होती उसकी माँग नहीं करते । इसलिये कि إلحاف का अर्थ यह है कि आवश्यकता न होने पर भी (व्यवसाय के रूप में) लोगों से माँगे, इस भावार्थ की पुष्टि हदीसों से होती है । जिनमें कहा गया है कि "गरीब वह नहीं है, जो एक-एक, दो-दो खजूर अथवा एक-एक, दो-दो निवाले के लिए दर-दर जाकर प्रश्न करता है । गरीब तो वह है, जो प्रश्न करने से बचता है ।" फिर नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने आयत ﴿لَا يَسْأَلُونَ النَّاسَ إِلْحَافًا﴾ का उदाहरण दिया (सहीह बुख़ारी, तफ़सीर व अल-जकात) इसलिये व्यवसायिक भिक्षुकों के अतिरिक्त धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिये हिजरत करने वाले, विद्यार्थियों, आलिमों तथा सफेद पोश लोगों की खोज करके जिन्हें आवश्यकता तो है, पर किसी के सामने हाथ नहीं फैलाते, सहायता करनी चाहिये । इसके अतिरिक्त हदीस में आया है कि जिसके पास इतना माल हो जो उसके

(२७४) जो लोग अपने माल को रात-दिन छुपा कर अथवा खुल्लम-खुल्ला ख़र्च करते हैं, उनके लिये उनके प्रभु के पास फल है, न उन्हें कोई भय है और न कोई शोक।

(२७५) ब्याज खाने वाले[1] लोग न खड़े होंगे, परन्तु उसी प्रकार, जिस प्रकार वह खड़ा होता

ٱلَّذِينَ يُنفِقُونَ أَمْوَٰلَهُم بِٱلَّيْلِ وَٱلنَّهَارِ سِرًّا وَعَلَانِيَةً فَلَهُمْ أَجْرُهُمْ عِندَ رَبِّهِمْ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُونَ ﴿٢٧٤﴾ ٱلَّذِينَ يَأْكُلُونَ ٱلرِّبَوٰا۟ لَا يَقُومُونَ إِلَّا كَمَا يَقُومُ ٱلَّذِى

जीवन यापन के लिये काफ़ी हो, परन्तु इसके उपरान्त वह लोगों के सामने हाथ फैलाता है, तो क़ियामत के दिन उसका चेहरा खून से लथपथ होगा। (विवरण अहलुस-सुनन, अल-अरवा, त्रिमिजी, किताबुल ज़कात)

[1] ربوا का शब्दकोष में अर्थ अधिकता तथा बढ़ोत्तरी है। और धार्मिक नियमों में इसे ब्याज कहते हैं। इसके दो भाग इस प्रकार हैं। एक रिबाफ़ज़्ल और दूसरा रिबानसियः।
प्रथम जो छः वस्तुओं में कमी अथवा अधिकता अथवा नगद ऋण के कारण से होता है। जिसका विवरण हदीस में है। जैसे गेंहूँ का बदला गेहूँ से करना है, इसके लिये कहा गया है कि बराबर-बराबर हो। दूसरे हाथों-हाथ हो। इसमें कमी अथवा अधिकता होगी, तो भी और हाथों-हाथ होने के अतिरिक्त एक नगद और दूसरा उधार अथवा दोनों ही उधार हों, तब भी ब्याज है। रिबा *"नसिया"* का अर्थ है किसी को जैसे ६ महीने के लिये सौ रूपये इस शर्त पर देना कि वापसी १२५ रूपया होगी। २५ रूपये ६ महीने की छूट के लिये लिए जायें। अली رضي الله عنه से सम्बन्धित वाक्य में इसे इस प्रकार वर्णित किया गया है। «كُلُّ قَرْضٍ جَرَّ مَنْفَعَةً فَهُوَ رِبًا» (ऋण पर लिया गया लाभ ब्याज है) यह ऋण अपनी आवश्यकता के लिये लिया गया हो अथवा व्यवसाय के लिये दोनों प्रकार के ऋण पर लाभ (ब्याज) हराम है। अशिक्षित काल में भी इस प्रकार के दोनों ऋणों का प्रचलन था। धर्मिक नियम ने दोनों में किसी प्रकार का भेद किये बिना दोनों प्रकार से प्राप्त ब्याज को कठोरता के साथ हराम कहा है। इसलिये कुछ लोगों का यह कहना कि व्यवसाय के लिये लिया गया ऋण (जो सामान्यतः बैंकों से लिया जाता है) इस पर लिया गया अधिक धन ब्याज नहीं है। इसलिये कि ऋण लेने वाला इससे लाभ उठाता है। उसका कुछ भाग वह बैंक को अथवा ऋण देने वाले को लौटा देता है तो इसमें क्या अनुचित है ? इसमें कठिनाई उन नये विचारकों को नज़र नहीं आती जो ब्याज को उचित सिद्ध करना चाहते हैं, वरना धार्मिक नियम में तो इसमें बड़ी कठिनाई है। जैसे ऋण लेकर व्यवसाय करने वाले को उस व्यवसाय से लाभ होना आवश्यक नहीं है। कई बार व्यवसाय में लगाया गया सारा धन डूब जाता है। जबकि इसके विपरीत ऋण देने वाला (चाहे बैंक हो अथवा कोई साहूकार) उसका लाभ निर्धारित है, जिसकी अदायगी प्रत्येक स्थिति में अनिवार्य है। यह अत्याचार का स्पष्ट प्रमाण है, तो फिर इस्लामी धार्मिक नियम किस प्रकार उसे उचित कह सकते

يَتَخَبَّطُهُ الشَّيْطٰنُ مِنَ الْمَسِّ ؕ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ قَالُوْٓا اِنَّمَا الْبَيْعُ مِثْلُ الرِّبٰوا ۘ وَاَحَلَّ اللّٰهُ الْبَيْعَ وَحَرَّمَ الرِّبٰوا ؕ فَمَنْ جَآءَهٗ مَوْعِظَةٌ مِّنْ رَّبِّهٖ فَانْتَهٰى فَلَهٗ مَا سَلَفَ ؕ وَاَمْرُهٗٓ اِلَى اللّٰهِ ؕ وَمَنْ عَادَ فَاُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ﴿۲۷۵﴾

है, जिसे शैतान लग कर पागल बना देता है।[1] यह इसलिये कि यह कहा करते थे कि व्यापार भी तो ब्याज ही के समान है।[2] जबकि अल्लाह (तआला) ने व्यापार को हलाल किया और ब्याज को हराम। और जो व्यक्ति अपने पास आयी हुई अल्लाह (तआला) की शिक्षा सुन कर रूक गया उसके लिये वह है जो व्यतीत हो गया।[3] और उसका मामला अल्लाह (तआला) के पास है।[4] और जो फिर (हराम की ओर) पलटा वह नरकवासी है, वे सदैव उसी में रहेंगे।

हैं। वल्कि धर्मिक नियम तो ईमानवालों को समाज के वह व्यक्ति जिनको सहायता की आवश्यकता है, बिना किसी प्रकार के सांसारिक लाभ की कामना किये, इस प्रकार के लोगों की सहायता करने पर बल देता है। जिससे समाज में भाईचारा, प्रेम, सहायता, आदर एवं सम्मान की भावना उत्पन्न हो। इसके विपरीत ब्याज के इस नियम से कठोरता और स्वार्थ को बढ़ावा मिलता है। एक धनवान को अपने धन से लाभ की इच्छा होती है, चाहे समाज के वह लोग, रोग, भूख, निर्धनता से पीड़ित ही क्यों न हों अथवा बेरोज़गार होने के कारण अपने जीवन से मोह न हो। धर्मिक नियम इस कठोरता तथा अत्याचार को किस प्रकार पसन्द कर सकता है? इसकी बहुत सी अन्य हानियाँ हैं, विस्तार की यहाँ आवश्यकता नहीं है। अतः ब्याज कदापि हराम है, चाहे ब्याज व्यक्तिगत (अपनी आवश्यकता के लिये गये ऋण पर ब्याज) हो अथवा संस्थागत ब्याज (व्यावसायिक कार्य के लिए लिये गये ऋण पर ब्याज) हो।

[1]ब्याज लेने वाले की यह स्थिति क़ब्र से उठते समय अथवा प्रलय के मैदान में होगी।

[2]हालाँकि व्यापार में तो धन-सामग्री का परस्पर लेन देन होता रहता है। दूसरे इसमें लाभ-हानि की सम्भावना रहती है, जबकि ब्याज में यह दोनों बातें नहीं होती हैं। अतः अल्लाह ने बेचने को वैध और ब्याज को अवैध कहा है। फिर यह दोनों एक कैसे हो सकते हैं?

[3]ईमान लाने तथा क्षमा माँग लेने के पश्चात पिछले ब्याज लेने पर पकड़ नहीं होगी।

[4] कि वह क्षमा माँगने के पश्चात अडिग रहता है अथवा फिर से कुकर्म और कुविचार के कारण उसको उसकी स्थिति पर छोड़ देते हैं। इसलिये पुनः ब्याज लेने वाले को कठोर दण्ड की धमकी है।

(२७६) अल्लाह (तआला) ब्याज को मिटाता है और दान को बढ़ाता है।[1] और अल्लाह (तआला) किसी कृतघ्न एवं पापी को मित्र नहीं बनाता।

يَمْحَقُ اللَّهُ الرِّبَا وَيُرْبِي الصَّدَقَاتِ ۗ وَاللَّهُ لَا يُحِبُّ كُلَّ كَفَّارٍ أَثِيمٍ ﴿٢٧٦﴾

(२७७) जो लोग ईमान के साथ (सुन्नत के अनुसार) काम करते, नमाज़ों को स्थापित करते हैं और जकात अदा करते हैं, उनका फल उनके पालनहार के पास है। उन पर न तो कोई भय है और न कोई दुख।

إِنَّ الَّذِينَ آمَنُوا وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ وَأَقَامُوا الصَّلَاةَ وَآتَوُا الزَّكَاةَ لَهُمْ أَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُونَ ﴿٢٧٧﴾

(२७८) हे ईमानवालो ! अल्लाह (तआला) से डरो और जो ब्याज शेष रह गया है, वह छोड़ दो यदि तुम सचमुच ईमानवाले हो।

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا اتَّقُوا اللَّهَ وَذَرُوا مَا بَقِيَ مِنَ الرِّبَا إِنْ كُنْتُمْ مُؤْمِنِينَ ﴿٢٧٨﴾

(२७९) यदि ऐसा नहीं करते तो अल्लाह (तआला) और उसके रसूल से लड़ने के लिये तैयार हो जाओ।[2] और यदि क्षमा माँग लो तो तुम्हारा मूलधन तुम्हारा ही है न तुम अत्याचार करो और न तुम पर अत्याचार किया जाये।[3]

فَإِنْ لَمْ تَفْعَلُوا فَأْذَنُوا بِحَرْبٍ مِنَ اللَّهِ وَرَسُولِهِ ۖ وَإِنْ تُبْتُمْ فَلَكُمْ رُءُوسُ أَمْوَالِكُمْ لَا تَظْلِمُونَ وَلَا تُظْلَمُونَ ﴿٢٧٩﴾

---

[1]यह ब्याज के वास्तविक एवं आत्मिक हानि के पश्चात दान के लाभों का विवरण है। ब्याज से देखने में तो बढ़ोत्तरी होती है, परन्तु उसके अध्यात्मिक अर्थ के अनुसार परिणाम स्वरूप ब्याज का धन उसकी बरबादी एवं ख़राबी का कारण बनता है। इस बात का समर्थन अब पाश्चात्य देश के अर्थशास्त्री भी करने लगे हैं।

[2]यह ऐसी कड़ी चेतावनी है जो किसी अन्य अपराध के करने पर नहीं आई है। इसलिये आदरणीय अब्दुल्लाह बिन अब्बास ने कहा कि जो व्यक्ति इस्लामी राज्य में ब्याज त्यागने के लिये तैयार न हो तो समय के राज्य प्रमुख का दायित्व है कि उससे क्षमा-याचना कराये (क्योंकि वह अल्लाह तथा रसूल से युद्ध की घोषणा कर रहा है) तथा न रूकने की दशा में उसकी गर्दन मार दे। (इब्ने कसीर)

[3]तुम यदि मूलधन से अधिक धन वसूल करोगे, तो यह तुम्हारा अत्याचार होगा और यदि तुम्हें मूलधन न दिया जाये, तो यह तुम पर अत्याचार होगा।

وَإِنْ كَانَ ذُو عُسْرَةٍ فَنَظِرَةٌ إِلَىٰ مَيْسَرَةٍ ۚ وَأَنْ تَصَدَّقُوا خَيْرٌ لَكُمْ ۖ إِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُونَ ﴿٢٨٠﴾

(२८०) और यदि कोई निर्धन हो, तो उसे सुविधा तक समय देना चाहिये, तथा दान कर दो तो तुम्हारे लिये अति श्रेष्ठ है ।[1] यदि तुम में ज्ञान हो ।

وَاتَّقُوا يَوْمًا تُرْجَعُونَ فِيهِ إِلَى اللَّهِ ۖ ثُمَّ تُوَفَّىٰ كُلُّ نَفْسٍ مَا كَسَبَتْ وَهُمْ لَا يُظْلَمُونَ ﴿٢٨١﴾

(२८१) और उस दिन से डरो, जिसमें तुम सब (अल्लाह तआला) की ओर लौटाये जाओगे और प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्मों के अनुसार पूरा-पूरा बदला दिया जायेगा । और उन पर अत्याचार नहीं किया जायेगा ।[2]

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا إِذَا تَدَايَنْتُمْ بِدَيْنٍ إِلَىٰ أَجَلٍ

(२८२) हे ईमानवालो ! जब तुम आपस में निर्धारित अवधि के लिए एक-दूसरे से उधार का लेन-देन करो तो लिख लिया करो ।[3] और

[1]अज्ञान काल में ऋण को अदा न करने के कारण ब्याज पर ब्याज से मूलधन में इतनी वृद्धि हो जाती थी, कि एक छोटा सा मूलधन एक पर्वत बन जाता था, जिनका अदा करना असम्भव हो जाता । अल्लाह तआला ने आदेश दिया कि यदि कोई निर्धन है तो (ब्याज लेना ही नहीं चाहिये, तथा मूलधन लेने में भी) सरलता से उसे अदा करने का समय देना चाहिये । और यदि ऋण क्षमा कर दो तो यह और भी श्रेष्ठ है । हदीस में भी इसकी श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है । कितना अन्तर है दोनों नियमों में ? एक पूर्णरूप से कठोरता, अत्याचार और स्वार्थी नियम और दूसरा प्रेम, सहानुभूति और एक-दूसरे की सहायता का नियम । मुसलमान यदि स्वयं इस कृपालु और कल्याणकारी अल्लाह के नियमों पर न चले, तो इसमें इस्लाम का क्या दोष ? और अल्लाह पर क्या आक्षेप ? काश, मुसलमान अपने धर्म के महत्व और सार्थकता को समझ सके और उस पर अपनी जीवन-धारा का प्रवाहित कर सकें ।

[2]कुछ कथनानुसार यह *नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* पर अवतरित अन्तिम आयत (श्लोक) है जिसके पश्चात ही आप का निधन हो गया ।

[3]जव व्याज के नियमों का कठोरता से निषेध किया गया और दान देने पर बल दिया गया, तो फिर ऐसे समाज में ऋण की आवश्यकता विशेष रूप से हुई । क्योंकि ब्याज तो वैसे ही वर्जित है, और प्रत्येक व्यक्ति इतना दान नहीं कर सकता । तथा हर व्यक्ति अपने सम्मान के कारण दान लेना पसन्द नहीं करता तो ऐसे में केवल ऋण लेना पड़ता है । इसीलिये हदीस में ऋण देने पर वड़े पुण्य वर्णित किये गये हैं । इसके देने में आनाकानी और आलस्य के कारण झगड़ा भी हो सकता है । इसलिये इस आयत में जिसे आयत दैन कहा जाता है और जो क़ुरआन

مُّسَمًّى فَاكْتُبُوهُ ۚ وَلْيَكْتُب بَّيْنَكُمْ
كَاتِبٌ بِالْعَدْلِ ۚ وَلَا يَأْبَ
كَاتِبٌ أَن يَكْتُبَ كَمَا عَلَّمَهُ اللَّهُ
فَلْيَكْتُبْ وَلْيُمْلِلِ الَّذِي عَلَيْهِ
الْحَقُّ وَلْيَتَّقِ اللَّهَ رَبَّهُ وَلَا يَبْخَسْ
مِنْهُ شَيْئًا ۚ فَإِن كَانَ الَّذِي عَلَيْهِ
الْحَقُّ سَفِيهًا أَوْ ضَعِيفًا
أَوْ لَا يَسْتَطِيعُ أَن يُمِلَّ هُوَ
فَلْيُمْلِلْ وَلِيُّهُ بِالْعَدْلِ ۚ
وَاسْتَشْهِدُوا شَهِيدَيْنِ مِن
رِّجَالِكُمْ ۖ فَإِن لَّمْ يَكُونَا رَجُلَيْنِ
فَرَجُلٌ وَامْرَأَتَانِ مِمَّن تَرْضَوْنَ
مِنَ الشُّهَدَاءِ أَن تَضِلَّ إِحْدَاهُمَا

लेखक को चाहिये कि आपस का विषय न्याय के साथ लिखे, लेखक को चाहिये कि लिखने से इंकार न करे, जैसे अल्लाह (तआला) ने उसे सिखाया है, उसी प्रकार उसे भी लिख देना चाहिये और जिसके ऊपर अधिकार हो वह लिखवाये ।[1] और अपने अल्लाह (तआला) से डरे जो उसका प्रभु है और अधिकार में से कुछ घटाये नहीं, यदि जिस व्यक्ति पर अधिकार हो और वह अशिक्षित हो अथवा दुर्बल हो अथवा लिखवाने की शक्ति न रखता हो, तो उसका संरक्षक न्याय के साथ लिखवा दे और अपने में से दो पुरूषों को साक्षी रख लो, यदि दो पुरूष न हों, तो एक पुरूष और दो स्त्रियाँ जिन्हें तुम साक्षी के रूप में पसन्द कर लो ।[2]

की सबसे लम्बी आयत है। अल्लाह तआला ने ऋण के लिये आवश्यक निर्देश दिये हैं। ताकि अनिवार्य आवश्यकता झगड़े का कारण न बने। इसके लिये एक आदेश यह दिया कि अवधि निर्धारित कर लो। दूसरा यह कि इसे लिख लो तीसरा यह कि इस पर दो मुसलमान पुरूष अथवा एक पुरूष और दो स्त्रियों को साक्षी बना लो।

[1]इससे तात्पर्य ऋणी है अर्थात वह अल्लाह से डरता हुआ धन को लिखवाये, इसमें कमी न करे। आगे चलकर कहा जा रहा है कि यदि यह ऋणी मन्दबुद्धि अथवा कमज़ोर बच्चा अथवा पागल है, तो उसके संरक्षक को चाहिये कि न्याय के साथ लिखवा ले ताकि ऋणी (ऋण देने वाला) को हानि न हो।

[2]अर्थात जिनकी धार्मिकता तथा न्याय प्रियता पर तुम्हें विश्वास हो। इसके अतिरिक्त क़ुरआन करीम के इन सूत्रों से ज्ञात हुआ कि दो स्त्रियों का साक्ष्य एक पुरूष के समान है। तथा बिन पुरूष के स्त्रियों का साक्ष्य उचित नहीं है, उन समस्याओं के अतिरिक्त जिसमें स्त्री के अतिरिक्त किसी को ज्ञान नहीं हो सकता, इस मत में मतभेद है कि वादी (मुद्दई) की एक प्रतिज्ञा के साथ दो स्त्रियों के साक्ष्य पर निर्णय करना उचित है, अथवा नहीं ? जिस प्रकार एक पुरूष के साक्ष्य के पश्चात निर्णय करना उचित है, जबकि दूसरे साक्ष्य के स्थान पर वादी शपथ लेकर कहे। परन्तु हनफ़ी धर्माचार्यों के निकट यह उचित नहीं। जबकि हदीस के जानने वाले इसके पक्ष में हैं, क्योंकि हदीस से एक साक्ष्य और शपथ के

فَتُذَكِّرَ اِحْدٰىهُمَا الْاُخْرٰى ؕ
وَلَا يَاْبَ الشُّهَدَآءُ اِذَا مَا دُعُوْا ؕ
وَلَا تَسْـَٔمُوْٓا اَنْ تَكْتُبُوْهُ صَغِيْرًا اَوْ كَبِيْرًا
اِلٰٓى اَجَلِهٖ ؕ ذٰلِكُمْ اَقْسَطُ
عِنْدَ اللّٰهِ وَاَقْوَمُ لِلشَّهَادَةِ
وَاَدْنٰٓى اَلَّا تَرْتَابُوْٓا اِلَّآ اَنْ
تَكُوْنَ تِجَارَةً حَاضِرَةً
تُدِيْرُوْنَهَا بَيْنَكُمْ فَلَيْسَ
عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَلَّا تَكْتُبُوْهَا ؕ وَاَشْهِدُوْٓا
اِذَا تَبَايَعْتُمْ ۪ وَلَا يُضَآرَّ كَاتِبٌ
وَّلَا شَهِيْدٌ ؕ وَاِنْ تَفْعَلُوْا فَاِنَّهٗ

ताकि एक की भूल-चूक को दूसरी याद दिला दे ।[1] और साक्षियों को चाहिये कि वे जब बुलाये जायें, तो इंकार न करें, और ऋण को जिसकी अवधि निर्धारित है, चाहे छोटा हो या बड़ा हो लिखने में आलस्य न करो । अल्लाह तआला के निकट यह बात बहुत न्यायेचित है । और साक्ष्य को ठीक रखने वाली और शंका से भी अधिक बचाने वाली है ।[2] और यह बात अलग है कि वह मामला नगद व्यापार के रूप में हो जो आपस में लेन-देन कर रहे हो, तो तुम पर उसके न लिखने में कोई पाप नहीं । क्रय-विक्रय के समय भी साक्षी निर्धारित कर लिया करो ।[3] और (याद रखो) न तो लिखने

साथ निर्णय करने की पुष्टि होती है, और जब दो स्त्रियाँ एक पुरूष के साक्ष्य के बराबर हैं तो दो स्त्रियों और शपथ के साथ निर्णय करना उचित होगा । (फ़तहुल क़दीर)

[1]यह एक पुरूष के सापेक्ष दो स्त्रियों को निर्धारित करने की विशेषता एवं बुद्धिमत्ता है । अर्थात स्त्री बुद्धि और याद रखने में पुरूष से कमज़ोर है । (जैसाकि सहीह मुस्लिम की एक हदीस में स्त्री को मन्दबुद्धि कहा गया है) यह स्त्री के अधिकारों का हनन तथा अपमान का सूचक नहीं है, (जैसाकि कुछ लोग कहते हैं) बल्कि उनके प्राकृतिक क्षीणता का वर्णन है, जो अल्लाह तआला का ज्ञान एवं इच्छा पर आधारित है । अहंकार के कारण कोई इसको स्वीकार न करे, तो और बात है, परन्तु वास्तविकता एवं घटनाओं के आधार पर इसका खण्डन नहीं किया जा सकता ।

[2] लिखने का लाभ है कि इससे न्याय की माँग पूरी होगा । साक्ष्य भी सही होगा (कि साक्षी के उपस्थिति न होने अथवा मृत्यु के उपरान्त उनका लिखा हुआ लेख साक्ष्य बन जायेगा) और किसी प्रकार की शंका से दोनों पक्ष सुरक्षित रहेंगे, क्योंकि शंका होने की स्थिति में लेख देख लेने पर शंका दूर कर ली जायेगी ।

[3]यह वह क्रय-विक्रय है जिसमें ऋण हो अथवा सौदा तय हो जाने के पश्चात भी विचलन की संभावना हो, वरन् इससे पूर्व नगद सौदे को लिखने से अलग किया जा चुका है । कुछ ने इस विक्रय से मकान व दूकान, बाग़ अथवा पशु का विक्रय अर्थ लिया है । (ऐसरूत्तफ़ासीर)

فُسُوقٌۢ بِكُمۡۗ وَاتَّقُوا اللّٰهَؕ وَيُعَلِّمُكُمُ اللّٰهُؕ وَاللّٰهُ بِكُلِّ شَيۡءٍ عَلِيۡمٌ ﴿٢٨٢﴾

वाले को हानि पहुँचाई जाये और न साक्षियों को,[1] और यदि तुम ऐसा करो, तो यह तुम्हारी खुली अवज्ञा है। अल्लाह (तआला) से डरो।[2] अल्लाह (तआला) तुम्हें शिक्षा दे रहा है, और अल्लाह (तआला) सर्वज्ञ है।

وَاِنۡ كُنۡتُمۡ عَلٰى سَفَرٍ وَّلَمۡ تَجِدُوۡا كَاتِبًا فَرِهٰنٌ مَّقۡبُوۡضَةٌ ؕ فَاِنۡ اَمِنَ بَعۡضُكُمۡ بَعۡضًا فَلۡيُؤَدِّ الَّذِى اؤۡتُمِنَ اَمَانَـتَهٗ وَلۡيَتَّقِ اللّٰهَ رَبَّهٗ ؕ وَلَا تَكۡتُمُوا الشَّهَادَةَ ؕ وَمَنۡ يَّكۡتُمۡهَا فَاِنَّهٗۤ اٰثِمٌ قَلۡبُهٗ ؕ

(२८३) और यदि तुम यात्रा में हो और लिखने वाला न पाओ, तो गिरवी अपने पास रख लिया करो।[3] और यदि आपस में एक-दूसरे पर विश्वास हो, तो जिसे धरोहर दी गयी है वह उसे अदा कर दे, और अल्लाह (तआला) से डरता रहे, जो उसका स्वामी है।[4] और साक्ष्य को न छुपाओ और जो उसे छिपा ले वह

---

[1]इनको हानि पहुँचाने से तात्पर्य यह है कि बहुत दूर से उन्हें बुलाया जाये, जिससे उनकी व्यस्तता में अड़चन तथा व्यापार में हानि हो अथवा उनको झूठी बात लिखने अथवा उसका साक्षी बनने के लिए बाध्य किया जाये।

[2]अर्थात जिन बातों पर बल दिया गया है उन्हें करो तथा जिनसे रोका गया है रूक जाओ।

[3]यदि यात्रा में ऋण लेने की आवश्यकता पड़ जाये और वहाँ लेखक अथवा काग़ज, कलम न मिले ऐसी स्थिति में उसका समरूप कार्य करने को बताया जा रहा है। कि ऋणी व्यक्ति कोई वस्तु ऋण देने वाले के पास गिरवी रख दे। इससे गिरवी रखने का औचित्य सिद्ध होता है। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अपनी कवच एक यहूदी के पास गिरवी रखी थी। (सहीहैन) परन्तु यदि गिरवी रखी हुई वस्तु से किसी प्रकार का लाभ होता है, तो उससे लाभान्वित उसका मालिक (ऋणी) होगा, न कि ऋण देने वाला। परन्तु यदि ऋण देने वाले का उस पर कुछ व्यय होता है, तो वह ऋणी से प्राप्त कर सकता है। शेष लाभ मालिक को देना आवश्यक होगा।

[4]यदि एक-दूसरे पर भरोसा हो, तो बिना गिरवी रखे भी ऋण का सौदा कर सकते हो। अमानत से तात्पर्य यहाँ ऋण है। अल्लाह से डरते हुए उसे उचित रूप से अदा कर दो।

وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ عَلِيْمٌ ﴿٢٨٣﴾

मन का पापी है |[1] और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह (तआला) उसे भली भाँति जानता है |

لِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۗ وَاِنْ تُبْدُوْا مَا فِيْٓ اَنْفُسِكُمْ اَوْ تُخْفُوْهُ يُحَاسِبْكُمْ بِهِ اللّٰهُ ۗ فَيَغْفِرُ لِمَنْ يَّشَآءُ وَيُعَذِّبُ مَنْ يَّشَآءُ ۗ وَاللّٰهُ عَلٰى

(२८४) आकाशों और धरती की प्रत्येक वस्तु अल्लाह (तआला) के अधिकार में है | तुम्हारे दिलों में जो कुछ है, उसे चाहे प्रकट करो अथवा छुपाओ, अल्लाह (तआला) उसका हिसाब लेगा |[2] फिर जिसे चाहे क्षमा कर दे

---

[1]साक्ष्य को छिपाना महापाप है | इसलिये इसकी अति भर्त्सना यहाँ क़ुरआन में तथा हदीस में की गयी है | इसलिये सही साक्ष्य की बड़ी श्रेष्ठता भी है | सहीह मुस्लिम की हदीस है | *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया :

«أَلَا أُخْبِرُكُمْ بِخَيْرِ الشُّهَدَاءِ؟ الَّذِي يَأْتِي بِشَهَادَتِهِ قَبْلَ أَنْ يُسْأَلَهَا».

वह सबसे श्रेष्ठ साक्षी है, जो बिना साक्ष्य की माँग के, स्वयं साक्ष्य के लिये उपस्थिति हो जाये | (सहीह मुस्लिम, उदघृत इब्ने कसीर)

एक दूसरे कथन में बुरे साक्षी की ओर इंगित किया गया है |

«أَلَا أُخْبِرُكُمْ بِشَرِّ الشُّهَدَاءِ؟ الَّذِيْنَ يَشْهَدُونَ قَبْلَ أَنْ يُسْتَشْهَدُوا».

"क्या मैं तुम्हें वह साक्षी न बतला दूँ, जो बहुत बुरा साक्षी हो ? यह वह लोग हैं जो साक्ष्य की माँग किये बिना उससे पूर्व ही साक्ष्य देते हैं |" (सहीह बुख़ारी, किताबुल रिक़ाक तथा मुस्लिम, किताबु फ़ज़ाएल अल-सहाबा)

अर्थात झूठी साक्ष्य देकर महापाप करने के भागी बनते हैं | शेष आयत में दिल का विशेष रूप से वर्णन किया गया है, इसलिए कि गोपनीयता दिल का ही कर्म है | इसके अतिरिक्त दिल सम्पूर्ण शरीर का प्रमुख एवं विशेष भाग है | और ऐसा विशेष माँस का टुकड़ा है, यदि यह ठीक रहे, तो सम्पूर्ण शरीर ठीक रहता है और यदि इसमें कोई ख़राबी उत्पन्न हो जाये, तो सम्पूर्ण शरीर में ख़राबी उत्पन्न हो जाती है | (हदीस के भाँति)

[2]हदीस में है कि जब यह आयत उतरी तो सहाबा किराम (*रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के सहचर) चिन्तित हुए | वे *रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की सेवा में उपस्थिति हुए और कहा, हे *रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* | नमाज़, रोज़ा, ज़कात तथा धर्मयुद्ध आदि जिनका भी आदेश दिया गया है, हम उसे करते हैं | क्योंकि यह हमारी शक्ति से अधिक नहीं, परन्तु मनोगत विचार एवं शंकाओं पर हमारी कोई पकड़ नहीं है | और यह मनुष्य की शक्ति के बाहर है | परन्तु अल्लाह तआला ने

كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ ﴿٢٨٤﴾

और जिसे चाहे दण्ड दे । और अल्लाह (तआला) सर्वशक्तिमान है ।

آمَنَ الرَّسُولُ بِمَا أُنزِلَ إِلَيْهِ مِن رَّبِّهِ وَالْمُؤْمِنُونَ ۚ كُلٌّ آمَنَ بِاللَّهِ وَمَلَائِكَتِهِ وَكُتُبِهِ وَرُسُلِهِ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ أَحَدٍ

(२८५) रसूल उस चीज़ पर ईमान लाये जो उसकी ओर अल्लाह (तआला) की ओर से उतारी गयी और मुसलमान भी ईमान लाये । यह सब अल्लाह (तआला) और उसके फ़रिश्ते पर, और उसकी किताबों पर, और उसके

उस पर भी पकड़ करने की घोषणा की है । *नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया : "अभी तो तुम سمعنا و أطعنا (हमने सुना और हमने पालन किया) ही कहो ।" अत: सहाबा के इस सुनने तथा पालन करने की भावना को देखकर अल्लाह तआला ने यह आयत ﴿لَا يُكَلِّفُ اللَّهُ نَفْسًا إِلَّا وُسْعَهَا﴾ (अल्लाह तआला किसी भी जीव पर उसके सामर्थ्य से अधिक भार नहीं रखता) से निरस्त कर दिया । (इब्ने कसीर व फ़तहुल क़दीर) सहीहैन तथा सुनन की यह हदीस भी इसकी पुष्टि करती है ।

«إِنَّ اللهَ تَجَاوَزَ عَنْ أُمَّتِي مَا حَدَّثَتْ بِهِ أَنْفُسُهَا، مَا لَمْ تَتَكَلَّمْ أَوْ تَعْمَلْ بِهِ»

(अल्लाह तआला ने मेरी उम्मत (अनुयायी लोगों को कहते हैं) के मनोगत विचारों को क्षमा कर दिया है । परन्तु उन बातों पर पकड़ होगी, जिनको मुख से व्यक्त कर दिया हो अथवा उनके अनुसार कर्म किया जाये)

इससे ज्ञात हुआ कि दिल में उत्पन्न होने वाले कुविचारों पर तब तक पकड़ न होगी, जब तक वह संकल्प अथवा कर्म न बन जायें । इसके विपरीत इमाम इब्ने जरीर तबरी का विचार है कि आयत निरस्त नहीं है, क्योंकि पकड़ करने पर दण्ड देना आवश्यक नहीं है अर्थात ऐसा नहीं है कि अल्लाह तआला जिस बात पर पकड़ करे, तो उस पर दण्ड भी अवश्य दे । बल्कि अल्लाह तआला पकड़ तो हर एक बात की करेगा, परन्तु बहुत से लोग ऐसे होंगे कि उनकी पकड़ करने के पश्चात उन्हें क्षमा कर देगा, बल्कि कुछ के साथ ऐसा भी करेगा कि उसके एक-एक पाप याद करा के उनको उसे स्वीकार करायेगा और फिर कहेगा कि संसार में मैंने उन पर पर्दा डाल रखा था, जा आज मैने उन्हें क्षमा किया । (यह हदीस सहीह बुख़ारी व मुस्लिम आदि में है, उदघृत इब्ने कसीर) और कुछ विद्वानों ने कहा कि यह परिभाषिक अर्थ में निरस्त नहीं है, बल्कि कई बार इसे प्रकाशित करने के अर्थ में प्रयोग किया जाता है । अतएव सहाबा किराम के दिल में जो शंका इस आयत के कारण उत्पन्न हुई उसे आयत ﴿لَا يُكَلِّفُ اللَّهُ﴾ और हदीस إن الله تجاوز आदि से दूर कर दिया । इस प्रकार आयत के निरस्त मानने की आवश्यकता शेष नहीं रही ।

रसूलोपर ईमान लाये, उसके रसूलों में से किसी के मध्य हम मतभेद नहीं करते।[1] उन्होंने कहा कि हमने सुना और अनुकरण किया, हम तुझसे क्षमा चाहते हैं। हे, हमारे प्रभु ! और हमें तेरी ही ओर लौटना है।	مِّنْ رُّسُلِهٖ ۚ وَقَالُوْا سَمِعْنَا وَاَطَعْنَا ۗ غُفْرَانَكَ رَبَّنَا وَاِلَيْكَ الْمَصِيْرُ ﴿٢٨٥﴾
(२८६) अल्लाह किसी भी आत्मा पर उसके सामर्थ्य से अधिक बोझ नहीं डालता जो पुण्य वह करे वह उसके लिए है और जो बुराई वह करे वह उसी पर है। हे हमारे प्रभु ! यदि हम भूल गये हों अथवा ग़लती की हो, तो हमें न पकड़ना। हे हमारे प्रभु ! हम पर वह बोझ न डाल, जो हमसे पहले लोगों पर डाला था। हे हमारे प्रभु ! हम पर वह बोझ न डाल, जो हमारे सामर्थ्य में न हो और हमें क्षमा कर दे,	لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا ۗ لَهَا مَا كَسَبَتْ وَعَلَيْهَا مَا اكْتَسَبَتْ ۗ رَبَّنَا لَا تُؤَاخِذْنَا اِنْ نَّسِيْنَا اَوْ اَخْطَاْنَا ۚ رَبَّنَا وَلَا تَحْمِلْ عَلَيْنَا اِصْرًا كَمَا حَمَلْتَهٗ عَلَى الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِنَا ۚ رَبَّنَا وَلَا تُحَمِّلْنَا مَا لَا طَاقَةَ لَنَا بِهٖ ۚ وَاعْفُ عَنَّا ۗ وَاغْفِرْ لَنَا ۗ

[1]इस आयत में ईमान से सम्बन्धित विषयों का वर्णन है, जिन पर ईमानवालों को आस्था रखने का आदेश दिया गया है। और इससे पूर्व आयत لا يكلف الله में अल्लाह तआला की कृपा, दया, स्नेह और प्रेम का वर्णन है कि अल्लाह तआला ने मनुष्यों को कोई ऐसा कर्म करने पर बल नहीं दिया जो उसकी शक्ति से अधिक हो। इन दोनों आयतों की हदीसों में बड़ी प्रशंसा की गयी है। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया :

> "जो व्यक्ति *सूर: अल-बकर:* की अन्तिम दो आयतें रात्रि में पढ़ लेता है, तो यह काफ़ी हो जाती है।" (सहीह बुख़ारी, इब्ने कसीर)

अर्थात इस कर्म के कारण उसकी अल्लाह तआला सुरक्षा करता है। दूसरी हदीस में है *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* को मेराज की रात जो तीन चीजे मिली। उनमें से एक *सूर: अल-बकर:* की अन्तिम दो आयतें भी हैं। (सहीह मुस्लिम, बाब फ़ी ज़िक्रे सिदर: तुल मुनतहा) कई कथनों में ऐसा भी कहा गया है कि इस सूर: की अन्तिम आयतें आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को एक कोष से प्रदान की गईं जो अर्श इलाही के नीचे है। और यह आयतें किसी नबी को आप के अतिरिक्त नहीं प्रदान की गयीं। (अहमद, निसाई, तबरानी, बैहक़ी, हाकिम दारमी, आदि दुर्रेमंसूर) आदरणीय मआज़ रज़ी अल्लाह तआला अन्हु इस सूर: के अन्त में आमीन कहा करते थे। (इब्ने कसीर)

وَارْحَمْنَا ۚ أَنْتَ مَوْلٰىنَا فَانْصُرْنَا عَلَى الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ﴿٢٨٦﴾

और हमें मोक्ष प्रदान कर, और हम पर दया कर, तू ही हमारा मालिक है, हमें काफ़िर समुदाय पर विजय प्रदान कर।

सूरतु आले इमरान-३

سُوْرَةُ اٰلِ عِمْرٰنَ

सूर: *आले इमरान* मदीना में उतरी[1] इसमें दो सौ आयतें हैं और बीस रूकुऊ हैं।

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

अल्लाह के नाम से प्रारम्भ करता हूँ जो अत्यन्त कृपालु एवं अत्यन्त दयालु है।

الٓمّٓ ﴿١﴾

(१) अलिफ॰लाम॰मीम

اللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ الْحَيُّ الْقَيُّوْمُ ﴿٢﴾

(२) अल्लाह (तआला) वह है, जिसके अतिरिक्त कोई पूज्य नहीं, जो जीवित है और सभी का रक्षक है।[2]

---

[1]यह सूर: मदनी है। इसकी सभी आयतें विभिन्न समय पर मदीने में ही उतरीं और इसका प्रारम्भिक भाग अर्थात ८३ आयतों तक इसाईयों के नजरान के प्रतिनिधि मंडल (यह नगर अब सऊदी अरब में स्थिति है) के विषय में उतरा हुआ है, जो ९ हिजरी में *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की सेवा में उपस्थिति हुआ था। इसाईयों ने आकर *नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* से अपने इसाई विश्वास और इस्लाम के विषय में वाद-प्रतिवाद किया, जिसका खण्डन करते हुए उन्हें मुबाहिला (एक विधि है, जिसके अनुसार सौगन्ध खाकर अपनी बात कही जाती है) का आमन्त्रण भी दिया गया, जिसका विस्तार पूर्वक विवरण आगे आयेगा। उसी पृष्ठभूमि में क़ुरआन करीम की इन आयतों का अध्ययन किया जायेगा।

[2] حي और قيوم अल्लाह तआला की अति विशेष गुण हैं, हई का अर्थ है कि वह आदि से है और अन्त तक रहेगा, उसे मरण तथा विनाश नहीं। क़य्यूम का अर्थ वह सारी सृष्टि का आधार, रक्षक एवं संरक्षक है, सारी सृष्टि को उसकी आवश्यकता है उसे किसी की आवश्यकता नहीं। इसाई आदरणीय ईसा को अल्लाह अथवा अल्लाह का पुत्र अथवा तीन में से एक मानते थे। अर्थात उनको कहा जा रहा है कि जब आदरणीय ईसा भी अल्लाह की सृष्टि हैं, उन्होंने माँ के गर्भ से जन्म लिया, और उनका जन्म भी सृष्टि की उत्पत्ति के बहुत बाद का है, तो फिर वह अल्लाह अथवा अल्लाह के पुत्र किस प्रकार हो सकते हैं। यदि तुम्हारा विश्वास

نَزَّلَ عَلَيْكَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ وَاَنْزَلَ التَّوْرٰىةَ وَالْاِنْجِيْلَ ﴿٣﴾

(३) जिसने सत्य के साथ इस किताब (पवित्र क़ुरआन) को उतारा,[1] जो अपने से पूर्व के (धर्मशास्त्रों) को प्रमाणित करती है, और उसी ने इससे पूर्व (धर्मग्रन्थ) तौरात और इंजील को लोगों के मार्ग दर्शन के लिये उतारा ।[2]

مِنْ قَبْلُ هُدًى لِّلنَّاسِ وَاَنْزَلَ الْفُرْقَانَ ؕ اِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا بِاٰيٰتِ اللّٰهِ لَهُمْ عَذَابٌ شَدِيْدٌ ؕ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ ذُو انْتِقَامٍ ﴿٤﴾

(४) और क़ुरआन भी उसी ने उतारा ।[3] जो लोग अल्लाह (तआला) की आयतों से कुफ़्र करते हैं, उनके लिये कठोर यातनायें हैं । और अल्लाह (तआला) प्रभावशाली है, प्रत्यप्कारी है ।

اِنَّ اللّٰهَ لَا يَخْفٰى عَلَيْهِ شَيْءٌ فِى الْاَرْضِ وَلَا فِى السَّمَآءِ ﴿٥﴾

(५) नि:संदेह अल्लाह (तआला) से धरती और आकाश की कोई वस्तु छिपी नहीं है ।

सही होता, तो उन्हें सृष्टि के बजाये अल्लाह की विशेषताओं से युक्त एवं आदि से होना चाहिए था । इसके अतिरिक्त उनकी मृत्यु भी नहीं होनी चाहिये थी, परन्तु एक दिन आयेगा कि उन्हें भी मौत का मजा चखना पड़ेगा । और इसाईयों के कथानुसार वह मृत्यु को प्राप्त कर चुके । हदीसों में आता है कि तीन आयतों में अल्लाह के श्रेष्ठ नाम हैं, जिसके द्वारा प्रार्थना की जाये तो रद्द नहीं होती । एक यही आले इमरान की आयत, दूसरी आयतुल कुर्सी में ﴿اللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ الْحَيُّ الْقَيُّوْمُ﴾ तीसरी *सूर: ताहा* में ﴿وَعَنَتِ الْوُجُوْهُ لِلْحَيِّ الْقَيُّوْمِ﴾ (इब्ने कसीर तफ़सीर आयतुल कुर्सी)

[1]अर्थात इसके अल्लाह की ओर से अवतरित होने में कोई संशय नहीं ।

[2]इससे पहले अन्य नबियों पर जो किताबें उतरीं, यह किताब इसकी पुष्टि करती है । अर्थात जो बातें उनमें लिखी थीं, उनकी यर्थाथता और उनमें वर्णित भविषय वाणी को स्वीकार करती है । जिसका स्पष्ट अर्थ है कि यह क़ुरआन करीम भी उसी की ओर से उतरा है, जिसने इससे पूर्व अनेक धर्मशास्त्र उतारे हैं । यदि यह किसी अन्य की ओर से अथवा मानवीय प्रयासों का प्रतिफल होता, तो इनमें परस्पर अनुकूलता के बजाये प्रतिकूलता होती ।

[3]अर्थात अपने-अपने समय में तौरात और इंजील भी अवश्य लोगों के मार्गदर्शन का स्रोत थीं, इसलिये कि उनके उतारने का उद्देश्य ही यही था । फिर भी उसके पश्चात ﴿وَاَنْزَلَ الْفُرْقَانَ﴾ पुन: कह कर स्पष्ट कर दिया कि, तौरात और इंजील का युग समाप्त हो गया । अब क़ुरआन उतर चुका, वह फ़ुरक़ान है और अब केवल वही सत्य-असत्य की पहचान है, इसको सत्य माने बिना अल्लाह के निकट कोई आज्ञाकारी एवं निष्ठावादी नहीं ।

هُوَ الَّذِي يُصَوِّرُكُمْ فِي الْأَرْحَامِ كَيْفَ يَشَاءُ ۚ لَا إِلَٰهَ إِلَّا هُوَ الْعَزِيزُ الْحَكِيمُ ⑥

(६) वही माता के गर्भ में तुम्हारा रूप जिस प्रकार चाहता है, बनाता है[1] उसके अतिरिक्त कोई भी वास्तविक रूप से पूजने योग्य नहीं है, वह शक्तिशाली और ज्ञाता है।

هُوَ الَّذِي أَنْزَلَ عَلَيْكَ الْكِتَابَ مِنْهُ آيَاتٌ مُحْكَمَاتٌ هُنَّ أُمُّ الْكِتَابِ وَأُخَرُ مُتَشَابِهَاتٌ ۖ

(७) वही अल्लाह (तआला) है जिसने तुझ पर किताब उतारी, जिसमें स्पष्ट ठोस आयतें हैं, जो मूल किताब हैं और कुछ समान आयतें हैं,[2] यदि जिनके दिलों में खराबी है, तो वह

---

[1]सुरूप अथवा कुरूप नर अथवा नारी, सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य, अपूर्ण अथवा पूर्ण। ज़ब माता के गर्भ में यह सारी अवस्थायें देने वाला मात्र अल्लाह तआला ही है, तोआदरणीय ईसा पूज्य किस प्रकार हो सकते हैं ? जबकि वह स्वयं भी सृष्टि की इन अवस्थाओं से गुज़र कर दुनियां में आये हैं, जिसका उद्‌गम अल्लाह ने मां के गर्भ में स्थापित किया है।

[2] 'मुहकमात' से तात्पर्य वह आयतें हैं जिनमें आदेश, निषेध, समस्यायें एवं कथायें हैं, जिनका भावार्थ स्पष्ट एवं अटल है, उनके समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं आती। इसके विपरीत "*आयात मुताशाबिहात*" है। जैसे अल्लाह का अस्तित्व न्याय, तथा भाग्य की समस्यायें, स्वर्ग, नरक तथा मलायका (सुरों) स्वर्गदूतों आदि अर्थात परबोध का तथ्य हैं जिन की यर्थाथता एवं वास्तविकता को समझने में मानव असक्त है अथवा उनमें दुविधा अथवा द्वैत का अवकाश हो। अथवा कम से कम ऐसा अस्पष्टता हो जिससे मनुष्यों को भ्रमित किया जा सके। इसी कारण आगे कहा जा रहा है कि जिनके दिलों में ख़रावी होती है वह "*आयात मुताशाबिहात*" के पीछे पड़ जाते हैं और उनके द्वारा अशान्ति फैलाते हैं। जैसे इसाई हैं। क़ुरआन ने आदरणीय ईसा को अल्लाह का भक्त तथा नबी कहा है। यह एक स्पष्ट एवं दृढ़ (मोहकम) आयत है। लेकिन इसे छोड़कर क़ुरआन करीम में आदरणीय ईसा को "*रूहुल्लाह*" और "*कलिमतुल्लाह*" जो कहा गया है, उससे अपने भ्रामक विश्वास पर ग़लत अर्थ निकालते हैं। यही स्थिति अहले बिदअत की है। क़ुरआन करीम के स्पष्ट विश्वास के विपरीत बिदअत करने वालों ने जो भ्रमिक विश्वास गढ लिये हैं। यह उन्ही 'मुताशाबिहात' को आधार बनाते हैं। तथा प्राय: अपने तर्कों के द्वारा 'मुहकमात' को 'मुताशाबिहात' बना देते हैं أعاذنا الله منه इनके विपरीत दृढ़ विश्वासी मुसलमान 'मुहकमात' आयतों के अनुसार कर्म करते हैं और 'मुताशाबिहात' के अर्थ को भी (यदि इसमें अस्पष्टता हो) 'मुहकमात' की रोशनी में समझने का प्रयत्न करते हैं क्योंकि क़ुरआन ने इन्हीं को "*मूल किताब*" माना है। जिससे वह अशान्ति से भी सुरक्षित रहते हैं। और विश्वास से भटकने से भी सुरक्षित रहते हैं।

فَأَمَّا الَّذِينَ فِي قُلُوبِهِمْ زَيْغٌ فَيَتَّبِعُونَ مَا تَشَابَهَ مِنْهُ ابْتِغَاءَ الْفِتْنَةِ وَابْتِغَاءَ تَأْوِيلِهِ ۗ وَمَا يَعْلَمُ تَأْوِيلَهُ إِلَّا اللَّهُ ۗ وَالرَّاسِخُونَ فِي الْعِلْمِ يَقُولُونَ آمَنَّا بِهِ كُلٌّ مِّنْ عِندِ رَبِّنَا ۗ وَمَا يَذَّكَّرُ إِلَّا أُولُو الْأَلْبَابِ ⑦

समान आयतों के पीछे लग जाते हैं। अशान्ति उत्पन्न करने के लिये एवं उनकी कष्ट कल्पना के लिये, परन्तु उनके वास्तविक उद्देश्य को अल्लाह (तआला) के अतिरिक्त कोई नहीं जानता।[1] और पूर्ण एवं दृढ़ ज्ञान वाले यही कहते हैं कि हम तो उन पर ईमान ला चुके यह सब हमारे प्रभु की ओर से है, शिक्षा तो मात्र बुद्धिमान ही प्राप्त करते हैं।

رَبَّنَا لَا تُزِغْ قُلُوبَنَا بَعْدَ إِذْ هَدَيْتَنَا وَهَبْ لَنَا مِن لَّدُنكَ رَحْمَةً ۚ إِنَّكَ أَنتَ الْوَهَّابُ ⑧

(८) हे हमारे प्रभु ! हमें मार्गदर्शन के उपरान्त हमारे दिल टेढ़े न कर दे और हमें अपने पास से कृपा प्रदान कर, नि:संदेह तू ही परम दाता है।

رَبَّنَا إِنَّكَ جَامِعُ النَّاسِ لِيَوْمٍ لَّا رَيْبَ فِيهِ ۚ إِنَّ اللَّهَ لَا يُخْلِفُ الْمِيعَادَ ⑨

(९) हे हमारे प्रभु ! तू नि:संदेह लोगों को एक दिन एकत्रित करने वाला है, जिसके आने में कोई शंका नहीं। नि:संदेह अल्लाह (तआला) वचन के विपरीत नहीं करता।

إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا لَن تُغْنِيَ عَنْهُمْ أَمْوَالُهُمْ وَلَا أَوْلَادُهُم مِّنَ اللَّهِ شَيْئًا ۖ وَأُولَٰئِكَ هُمْ وَقُودُ النَّارِ ⑩

(१०) काफ़िरों को उनके धन तथा उनकी संतान अल्लाह (तआला) की यातनाओं से छुड़ाने में कुछ काम न आ सकेगी, यह तो नरक का ईंधन ही हैं।

---

[1]तावील का एक अर्थ है· किसी वस्तु के तत्व का ज्ञान। इस अर्थानुसार إلا الله पर रूकना आवश्यक है, क्योंकि प्रत्येक विषय की यर्थाथता की वास्तविक ज्ञान मात्र अल्लाह ही को है, दूसरा अर्थ किसी विषय की व्याख्या, भाष्य, वर्णन तथा स्पष्टीकरण है, इस अर्थानुसार والراسخون पर रुका जा सकता है, क्योंकि ज्ञानी लोग भी सहीह व्याख्या एवं भाष्य का ज्ञान रखते हैं। (इब्ने कसीर)

(११) जैसाकि फ़िरऔन की संतान का हाल हुआ, और उनका जो उनसे पूर्व थे, उन्होंने हमारी निशानियों को झुठलाया, फिर अल्लाह (तआला) ने उन्हें उनके पापों पर पकड़ लिया और अल्लाह (तआला) कठोर यातनाओं वाला है।

كَدَاْبِ اٰلِ فِرْعَوْنَ ۙ وَالَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ ۭ كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَا ۚ فَاَخَذَهُمُ اللّٰهُ بِذُنُوْبِهِمْ ۭ وَاللّٰهُ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ﴿١١﴾

(१२) काफ़िरों से कह दीजिये कि तुम लोग निकट भविष्य में पराजित किये जाओगे।[1] और नरक की ओर एकत्रित किये जाओगे और वह बुरा बिछौना है।

قُلْ لِّلَّذِيْنَ كَفَرُوْا سَتُغْلَبُوْنَ وَتُحْشَرُوْنَ اِلٰى جَهَنَّمَ ۭ وَبِئْسَ الْمِهَادُ ﴿١٢﴾

(१३) निःसंदेह तुम्हारे लिये शिक्षाप्रद निशानी थी, उन दो गुटों में जो गुथ गये थे, एक गुट अल्लाह के मार्ग में लड़ रहा था, और दूसरा गुट काफ़िरों का था, वह उन्हें आँखों की दृष्टि से अपने से दुगना देखते थे।[2] और

قَدْ كَانَ لَكُمْ اٰيَةٌ فِيْ فِئَتَيْنِ الْتَقَتَا ۭ فِئَةٌ تُقَاتِلُ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَاُخْرٰى كَافِرَةٌ يَّرَوْنَهُمْ مِّثْلَيْهِمْ رَاْيَ الْعَيْنِ ۭ

---

[1]यहाँ काफ़िरों (कृतघ्ना) से तात्पर्य यहूदी हैं, और यह भविष्यवाणी शीघ्र ही पूरी हो गयी। अतएव बनू क़ैनुक़ाअ और बनू नदीर को देश से निकाल दिया गया, बनू कुरैजा की हत्या की गयी। फिर ख़ैबर विजयी हुआ और सभी यहूदियों पर जिज़या (सुरक्षा कर) लागू कर दिया गया। (फ़तहुल क़दीर)

[2]अर्थात प्रत्येक पक्ष दूसरे पक्ष को अपने से दुगुना देखता था। काफ़िर की संख्या एक हज़ार के निकट थी, उन्हें मुसलमान दो हज़ार के लगभग दिखाई दे रहे थे। उद्देश्य उनके दिलों में मुसलमानों की धाक बिठाना था। और मुसलमानों की संख्या तीन सौ से कुछ ऊपर अर्थात (३१३) थी, उन्हें काफ़िर ६०० और ७०० के मध्य दिखाई पड़ते थे। वास्तविकता यह थी कि वास्तविक संख्या हज़ार के निकट (तीन गुनी) थी। इसका उद्देश्य मुसलमानों के साहस एवं शौर्य को बढ़ाना था। अपने से तीन गुना देखकर सम्भव था कि मुसलमान भयभीत हो जाते, इसके बजाय अपने से दुगना दिखने के कारण उनका साहस कम नहीं हुआ। परन्तु यह दुगुना दिखने की स्थिति प्रारम्भ में थी, फिर जब दोनों गुट आमने-सामने खड़े हो गये तो अल्लाह तआला ने इसके विपरीत दोनों को एक दूसरे की दृष्टि कम करके दिखाया ताकि कोई भी पक्ष लड़ाई से पीछे न हटे, बल्कि प्रत्येक आगे बढ़ने का प्रयत्न करे। (इब्ने कसीर) यह विवरण सूरः *अल-अंफ़ाल* की आयत संख्या ४४ में वर्णित की गयी है। यह बद्र के युद्ध की घटना है, जो हिजरत के पश्चात

وَاللّٰهُ يُؤَيِّدُ بِنَصْرِهٖ مَنْ يَّشَآءُ ؕ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَعِبْرَةً لِّاُولِى الْاَبْصَارِ ﴿١٣﴾

अल्लाह (तआला) जिसे चाहे अपनी सहायता से सुदृढ़ कर देता है। निःसंदेह इसमें आँखों वालों के लिये बड़ी शिक्षा है।

زُيِّنَ لِلنَّاسِ حُبُّ الشَّهَوٰتِ مِنَ النِّسَآءِ وَالْبَنِيْنَ وَالْقَنَاطِيْرِ الْمُقَنْطَرَةِ مِنَ الذَّهَبِ وَالْفِضَّةِ وَالْخَيْلِ الْمُسَوَّمَةِ وَالْاَنْعَامِ وَالْحَرْثِ ؕ ذٰلِكَ مَتَاعُ الْحَيٰوةِ

(१४) प्रिय वस्तुओं का प्रेम लोगों के लिये सौन्दर्यपूर्ण कर दिया गया है, जैसे स्त्रियाँ और पुत्र, और सोना, चाँदी के एकत्रित किये हुए ख़ज़ाने और निशानदार घोड़े और चौपाये और खेती।[1] यह साँसारिक जीवन का सामान

दूसरे वर्ष मुसलमानों और काफ़िरों के मध्य हुआ। यह कई प्रकार से अत्यन्त महत्वपूर्ण युद्ध था। प्रथम तो यह कि यह प्रथम युद्ध था। द्वितीय यह युद्ध योजनाओं के बिना हुआ। मुसलमान अबू सुफ़ियान के क़ाफ़िले के लिये निकले थे, जो सीरिया से व्यापारिक सामग्री लेकर मक्का आ रहा था, परन्तु सूचना मिल जाने के कारण वह अपने क़ाफ़िले को तो बचाकर ले गये, परन्तु मक्का के काफ़िर अपनी शक्ति और संख्या के घमंड में मुसलमानों पर चढ़ दौड़े और बद्र नामक स्थान पर यह युद्ध हुआ। तृतीय इसमें मुसलमानों को अल्लाह तआला की विशेष सहायता प्राप्त हुई। चतुर्थ इसमें काफ़िरों को अपमान जनक पराजय हुई, जिससे काफ़िरों के साहस क्षीण पड़ गये।

[1] شـــهوات से यहाँ तात्पर्य مشتبهات है अर्थात वह चीज़ें जो मनुष्य को प्राकृतिक रूप से प्रिय हैं। इसलिये इनसे अभिलाषा और उनसे प्रेम अनुचित नहीं है। परन्तु यह प्रेम इस्लामी धार्मिक नियमों के परिधि में तथा संतुलित हो। उनका सौन्दर्य भी अल्लाह तआला की ओर से परीक्षा है।

﴿ إِنَّا جَعَلْنَا مَا عَلَى الْأَرْضِ زِينَةً لَّهَا لِنَبْلُوَهُمْ ﴾

"हमने धरती पर जो कुछ बनाया है इसे धरती की सुन्दरता के लिये बनाया है, ताकि लोगों की हम परीक्षा लें।" (*अल-कहफ़-७*)

सर्वप्रथम स्त्री का वर्णन है क्योंकि प्रत्येक वयस्क पुरूष की सबसे बड़ी आवश्यकता भी है और सबसे अधिक प्रिय भी। स्वयं *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* का कथन है «حُبِّبَ إِلَيَّ النِّسَاءُ والطِّيبُ» (मुसनद अहमद) "स्त्री और सुगन्ध मुझे प्रिय है।" इसी प्रकार *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने सुशील स्त्री को "दुनियाँ की सर्वश्रेष्ठ चीज़" कहा है «خَيرُ مَتَاعِ الدُّنْيَا المَرْأَةُ الصَّالِحَةُ» इसलिये इससे धार्मिक नियमों के अन्तर्गत प्रेम करने को, जो धार्मिक नियमों के बाहर न हों, तो यह श्रेष्ठ जीवनसाथी भी है और आख़िरत का सामान

الدُّنْيَاۚ وَاللّٰهُ عِنْدَهٗ حُسْنُ الْمَاٰبِ ۝١٤

है, और लौटने का अच्छा ठिकाना तो अल्लाह (तआला) ही के पास है।

قُلْ اَؤُنَبِّئُكُمْ بِخَيْرٍ مِّنْ ذٰلِكُمْ ۚ لِلَّذِيْنَ اتَّقَوْا عِنْدَ رَبِّهِمْ جَنّٰتٌ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ

(१५) आप कह दीजिये कि क्या मैं तुम्हें इससे उत्तम वस्तु बताऊँ ? अल्लाह संयमी लोगों के लिये, उनके प्रभु के पास स्वर्ग हैं, जिनके नीचें

भी । वरन् यही स्त्री, पुरूष के लिये सबसे बड़ी आशान्ति है। *रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* का कथन है।

«مَا تَرَكْتُ بَعْدِي فِتْنَةً أَضَرَّ عَلَى الرِّجَالِ مِنَ النِّسَاءِ».

"मेरे पश्चात जो अशान्ति उत्पन्न होगी, उनमें पुरूषों के लिये सबसे बड़ी अशान्ति स्त्री है।" (सहीह बुख़ारी)

इसी प्रकार पुत्रों का प्रेम है । यदि इससे तात्पर्य मुसलमानों की शक्ति बढ़ाना और अस्तित्व तथा वंश को बढ़ाना है, तो प्रशंसनीय है, वरन् अप्रशंसनीय। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का कथन है।

«تَزَوَّجُوا الْوَدُودَ الْوَلُودَ؛ فَإِنِّي مُكَاثِرٌ بِكُمُ الْأُمَمَ يَوْمَ الْقِيَامَةِ» .

(अत्यधिक प्रेम करने वाली और अधिक बच्चों को जन्म देने वाली स्त्री से विवाह करो, इसलिये कि मैं क़ियामत के दिन दूसरी उम्मतों (समुदायों) के सापेक्ष अपनी उम्मत की संख्या पर गर्व करूँगा)

इस आयत से ब्रह्मचारी रहने का खंडन और परिवार नियोजन का अनुचित होना सिद्ध होता है क्योंकि بنين बहुवचन है। धन से भी आर्थिक व्यवस्था स्थापित करना, दया करना, दान व पुण्य और पुण्य के कार्यों में व्यय करना और किसी के सामने हाथ फैलाने से बचना है ताकि अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करें, तो इसका भी प्रेम परम आवश्यक है, तथापि अप्रशंसनीय। घोड़ों से तात्पर्य धर्मयुद्ध की तैयारी, अन्य पशुओं से कृषि कार्य तथा यातायात का कार्य लेना और धरती से उसकी उपज प्राप्त करना हो, तो यह सब प्रिय हैं, और यदि उद्देश्य केवल दुनियाँ कमाना और उस पर गर्व तथा घमंड व्यक्त करना और अल्लाह की याद से मुँह मोड़ कर ऐश्वर्य जीवन व्यतीत करना है, तो यह सबसे लाभकारी चीज़ें उसके लिये हानिकारक सिद्ध होंगी। "*क़नातीर*" *क़िनतार* (ख़ज़ाना) का बहुवचन है। तात्पर्य है ख़ज़ाने अर्थात सोने, चाँदी, धन-धान्य की अधिकता एवं परिपूर्णता । المسومة वह घोड़े जो चारागाह में चरने के लिए छोड़े गये हों अथवा धर्मयुद्ध के लिये तैयार किये गये हों अथवा चिन्हित जिन पर विभेद के लिये कोई चिन्ह अथवा अंक लगा दिया गया हो। (फ़तहुल क़दीर व इब्ने कसीर)

خٰلِدِيْنَ فِيْهَا وَاَزْوَاجٌ مُّطَهَّرَةٌ وَّرِضْوَانٌ مِّنَ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ بَصِيْرٌۢ بِالْعِبَادِ ۚ﴿۱۵﴾

नहरें बह रही हैं, जिनमें वे सदैव निवास करेंगे ।[1] और पवित्र पत्नियाँ[2] और अल्लाह (तआला) की प्रसन्नता है । और सभी भक्त अल्लाह (तआला) की दृष्टि में हैं ।

اَلَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَآ اِنَّنَآ اٰمَنَّا فَاغْفِرْ لَنَا ذُنُوْبَنَا وَقِنَا عَذَابَ النَّارِ ۚ﴿۱۶﴾

(१६) जो कहते हैं कि हे प्रभु । हम ईमान ला चुके, इसलिये हमारे पाप क्षमा कर दे और हमें अग्नि की यातना से बचा ।

اَلصّٰبِرِيْنَ وَالصّٰدِقِيْنَ وَالْقٰنِتِيْنَ وَالْمُنْفِقِيْنَ وَالْمُسْتَغْفِرِيْنَ بِالْاَسْحَارِ ﴿۱۷﴾

(१७) जो धैर्य रखने वाले, और सत्यवादी और आज्ञाकारी, तथा अल्लाह के मार्ग में धन व्यय करने वाले हैं और पिछली रात को मोक्ष प्राप्त करने की कामना के लिये प्रार्थना करने वाले हैं ।

شَهِدَ اللّٰهُ اَنَّهٗ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۙ وَالْمَلٰٓئِكَةُ وَاُولُوا الْعِلْمِ قَآئِمًۢا بِالْقِسْطِ ؕ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ

(१८) अल्लाह उसके फ़रिश्तों तथा ज्ञानियों ने न्याय पर स्थिर रहकर गवाही दी है कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई आराध्य नहीं[3]

---

[1]इस आयत में ईमानवालों को बताया जा रहा है, कि दुनियाँ की उपरोक्त वर्णित चीज़ों में ही न खो जाना, बल्कि उनसे श्रेष्ठ तो वह जीवन तथा उसकी कृपा है, जो प्रभु के पास है, जिसके अधिकारी अल्लाह के भय से भयभीत होने वाले हैं । इसलिये अल्लाह से डरो । यदि यह तुम्हारे अन्दर उत्पन्न हो गया, तो नि:संदेह दुनियाँ और परलोक की सारी भलाईयाँ अपने दामन में बटोर लोगे ।

[2]पवित्र का अर्थ है कि वह साँसारिक अपवित्रता अर्थात मैल-कुचैल, मासिक धर्म, और अन्य दूषण से पवित्र होंगी और सुशील एवं सुचरित्र होंगी । इसलिये अगली दो आयतों में अल्लाह के भय से भयभीत होने वालों की विशेषताओं का वर्णन है ।

[3]शहादत का अर्थ वर्णन करना तथा सूचित करना है । अर्थात अल्लाह तआला ने जो कुछ उत्पन्न तथा वर्णित किया, उसके द्वारा उसने अपने एक होने की ओर हमारा मार्गदर्शन किया । (फ़तहुल क़दीर) फ़रिश्ते तथा ज्ञानी भी उसके एक होने की गवाही देते हैं । इसमें ज्ञानियों की विशेषता तथा श्रेष्ठता है कि अल्लाह तआला ने अपने फ़रिश्तों के नाम के साथ उनका वर्णन किया है, परन्तु इससे तात्पर्य मात्र वही ज्ञानी हैं जो क़ुरआन तथा हदीस का ज्ञान रखते हैं । (फ़तहुल क़दीर)

الْعَزِيزُ الْحَكِيمُ ﴿١٨﴾

वही सर्व शक्तिमान निर्णय करता, उसके अतिरिक्त कोई आराधना के योग्य नहीं।

إِنَّ الدِّينَ عِندَ اللَّهِ الْإِسْلَامُ ۗ وَمَا اخْتَلَفَ الَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَابَ إِلَّا

(१९) निश्चय अल्लाह के पास धर्म इस्लाम ही है[1] (अल्लाह के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण)

---

[1]इस्लाम वही धर्म है जिसका प्रचार एवं शिक्षा प्रत्येक ईशदूत अपने युग में देते रहे तथा अब यह उस का पूर्ण स्वरूप है जिसे अन्तिम ईशदूत *मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* संसार के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। जिसमें एकेश्वरवाद, दूतत्व तथा परलोक के प्रति इस प्रकार विश्वास रखना है जैसे आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने बताया है, अब मात्र यह विश्वास रख लेना कि अल्लाह (परमेश्वर) एक है अथवा कुछ सत्कर्म कर लेना इस्लाम नहीं न इससे परलोक में मोक्ष प्राप्त होगा। विश्वास तथा धर्म यह है कि अल्लाह को एक माना जाये मात्र उसी एक पूज्य की उपासना की जाये मोहम्मद रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम समेत सभी ईशदूतों के प्रति विश्वास रखा जाये तथा आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर दूतत्व का समापन माना जाये तथा आस्था के साथ वह विश्वास एवं कर्म ग्रहण किये जायें जो कुरआन तथा ईशदूत के कथन (हदीस) में वर्णित हैं अब इस धर्म इस्लाम के सिवाय कोई अन्य धर्म अल्लाह के यहाँ स्वीकृत न होगा।

﴿وَمَن يَبْتَغِ غَيْرَ الْإِسْلَامِ دِينًا فَلَن يُقْبَلَ مِنْهُ وَهُوَ فِي الْآخِرَةِ مِنَ الْخَاسِرِينَ﴾ [آل عمران: ٨٥]

"और जो व्यक्ति इस्लाम के अतिरिक्त किसी धर्म की खोज करे उसका धर्म मान्य नहीं होगा और परलोक में वह क्षतिग्रस्तों में होगा"।

﴿قُلْ يَا أَيُّهَا النَّاسُ إِنِّي رَسُولُ اللَّهِ إِلَيْكُمْ جَمِيعًا﴾

"कह दीजिये कि हे लोगो ! मैं तुम सबकी ओर अल्लाह का दूत हूँ"। (सूर: *आराफ़*-१५८)

﴿تَبَارَكَ الَّذِي نَزَّلَ الْفُرْقَانَ عَلَىٰ عَبْدِهِ لِيَكُونَ لِلْعَالَمِينَ نَذِيرًا﴾

"शुभ है वह जिसने अपने भक्त पर फुरक़ान (विवेकारी शास्त्र) उतारा ताकि वह जगतों को सावधान करे"। (*अल-फुरक़ान*-१)

आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया : उस अल्लाह की सौगन्ध जिसके हाथ में मेरा प्राण है जो यहूदी अथवा इसाई मुझ पर विश्वास किये बिना मर जाये वह नरकीय है। (सहीह मुस्लिम) यह भी कहा कि मैं लाल-काले (सभी मानव) के लिये भेजा गया हूँ इसी कारण आपने अपने युग के सभी राजाओं को पत्र लिखकर उनको इस्लाम धर्म स्वीकार करने का आमन्त्रण दिया। (सहीहैन, माध्यम इब्ने कसीर)

مِنۢ بَعۡدِ مَا جَآءَهُمُ ٱلۡعِلۡمُ بَغۡيَۢا بَيۡنَهُمۡۗ وَمَن يَكۡفُرۡ بِـَٔايَٰتِ ٱللَّهِ فَإِنَّ ٱللَّهَ سَرِيعُ ٱلۡحِسَابِ ﴿١٩﴾

तथा जो धर्मशास्त्र दिये गये उन्होंने ज्ञान आने के पश्चात परस्पर द्वेष के कारण मतभेद किये।[1] तथा जो अल्लाह की आयतों (पवित्र क़ुरआन) को न माने[2] तो अल्लाह शीघ्र हिसाब लेगा।

فَإِنۡ حَآجُّوكَ فَقُلۡ أَسۡلَمۡتُ وَجۡهِيَ لِلَّهِ وَمَنِ ٱتَّبَعَنِۗ وَقُل لِّلَّذِينَ أُوتُواْ ٱلۡكِتَٰبَ وَٱلۡأُمِّيِّـۧنَ ءَأَسۡلَمۡتُمۡۚ فَإِنۡ أَسۡلَمُواْ فَقَدِ ٱهۡتَدَواْۖ وَّإِن تَوَلَّوۡاْ فَإِنَّمَا عَلَيۡكَ ٱلۡبَلَٰغُۗ وَٱللَّهُ بَصِيرُۢ بِٱلۡعِبَادِ ﴿٢٠﴾

(२०) यदि वह आप से विवाद करें तो आप कह दें कि मैंने तथा मेरे अनुयाईयों ने स्वयं को अल्लाह के प्रति समर्पित कर दिया तथा आप शास्त्रधारियों एवं अशिक्षित लोगों[3] को कहें कि क्या तुम इस्लाम लाये। यदि वह इस्लाम को स्वीकार कर लें तो सीधा रास्ता पा गये और यदि मुँह फेरें तो आप को मात्र पहुँचाना है और अल्लाह भक्तों को देख रहा है।

---

[1]उनके इस आपसी मतभेद से तात्पर्य वह मतभेद है, जो एक ही धर्म के मानने वालों ने आपस में उत्पन्न कर रखा था। जैसे : यहूदियों के आपसी मतभेद तथा गुटबन्दी, इसी प्रकार इसाईयों के आपसी मतभेद तथा गुटबन्दी। फिर उन मतभेदों का अर्थ भी है जो किताब वालों में आपस में थे। जिसके आधार पर यहूदी, इसाईयों को और इसाई यहूदियों को कहा करते थे कि "तुम किसी धर्म पर नहीं हो।" नबूअत मोहम्मदी तथा नबूअत ईसा भी इसी के अर्न्तगत आता है। परन्तु यह सभी मतभेद तर्कहीन थे, मात्र द्वेष, ईर्ष्या तथा घृणा के कारण थे अर्थात वह लोग सत्यता जानते हुए भी मात्र अपने विचारों तथा सांसारिक लाभ के कारण गलत बात पर अड़े रहे, और इसको धर्म बताते थे। ताकि उनकी नाक भी ऊंची रहे और उनका जनता का साथ भी बना रहे। अफ़सोस आज मुसलमानों के आलिमों की एक बड़ी संख्या ठीक उन्हीं गलत उद्देश्यों के लिये उसी ग़लत मार्ग पर चल रही है।

[2] यहाँ आयतों से तात्पर्य, वह प्रतीक हैं जो इस्लाम के ईश्वरीय धर्म को सिद्ध करती हैं।

[3]अशिक्षित लोगों से तात्पर्य अरब के मूर्तिपूजक हैं, जो किताब वालों की तुलना में सामान्यत: अशिक्षित थे।

إِنَّ الَّذِينَ يَكْفُرُونَ بِآيَاتِ اللَّهِ وَيَقْتُلُونَ النَّبِيِّينَ بِغَيْرِ حَقٍّ وَيَقْتُلُونَ الَّذِينَ يَأْمُرُونَ بِالْقِسْطِ مِنَ النَّاسِ فَبَشِّرْهُم بِعَذَابٍ أَلِيمٍ ﴿٢١﴾

(२१) नि:संदेह जो लोग अल्लाह (तआला) की आयतों से इंकार करते हैं, और ईशदूतों (अम्बिया) को अवैध हत करते हैं, तथा जो लोग न्याय की बात करें, उन्हें भी हत करते हैं ।[1] तो (हे नबी) आप उन्हें घोर यातनाओं से सूचित कर दीजिये ।

أُولَٰئِكَ الَّذِينَ حَبِطَتْ أَعْمَالُهُمْ فِي الدُّنْيَا وَالْآخِرَةِ وَمَا لَهُم مِّن نَّاصِرِينَ ﴿٢٢﴾

(२२) उन्ही के (पुण्य) कर्म लोक तथा परलोक में व्यर्थ हो गये तथा इनका कोई सहायक नहीं ।

أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ أُوتُوا نَصِيبًا مِّنَ الْكِتَابِ يُدْعَوْنَ إِلَىٰ كِتَابِ اللَّهِ لِيَحْكُمَ بَيْنَهُمْ ثُمَّ يَتَوَلَّىٰ فَرِيقٌ مِّنْهُمْ وَهُم مُّعْرِضُونَ ﴿٢٣﴾

(२३) क्या आपने उन्हें नहीं देखा, जिन्हें किताब का एक भाग दिया गया है, वह अपने आपस के निर्णय के लिये अल्लाह (तआला) की किताब की ओर बुलाये जाते हैं, फिर भी उनका एक गिरोह मुँह फेर कर लौट जाता है ।[2]

ذَٰلِكَ بِأَنَّهُمْ قَالُوا لَن تَمَسَّنَا النَّارُ إِلَّا أَيَّامًا مَّعْدُودَاتٍ وَغَرَّهُمْ

(२४) इसका कारण उनका यह कहना है कि उन्हें गिनती के कुछ दिन ही आग स्पर्श करेगी, यह उनकी मन गढ़न्त बातों ने उन्हें

---

[1]अर्थात उनकी दुष्टता एवं विद्रोह इतना बढ़ चुका था कि वे केवल नबियों की ही अनुचित रूप से हत्या नहीं किया करते बल्कि उन तक की भी हत्या कर देते, जो न्याय की बात कहते । अर्थात वह ईमानवाले, नि:स्वार्थी, सत्य का आमन्त्रण देने वालों की जो सत्कर्म करने को कहते और कुकर्म से रोकते थे, हत्या कर देते । नबियों के साथ उनका वर्णन करके अल्लाह तआला ने उनकी श्रेष्ठता तथा विशेषता भी स्पष्ट कर दी ।

[2]इन किताब वालों से तात्पर्य वह मदीने के रहने वाले यहूदी हैं, जिनका बहुमत इस्लाम धर्म स्वीकार करने योग्य ही नहीं थे, और इस्लाम, मुसलमानों और *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के विरोध में कुचक्रों को उत्पन्न करने में व्यस्त रहे, यहाँ तक कि उनके दो गिरोहों को देश निकाला तथा एक गिरोह की हत्या कर दी गयी ।

فِي دِينِهِم مَّا كَانُوا يَفْتَرُونَ ﴿٢٤﴾

उनके धर्म के विषय में उन्हें धोखे में डाल रखा है ।[1]

فَكَيْفَ إِذَا جَمَعْنَاهُمْ لِيَوْمٍ لَّا رَيْبَ فِيهِ وَوُفِّيَتْ كُلُّ نَفْسٍ مَّا كَسَبَتْ وَهُمْ لَا يُظْلَمُونَ ﴿٢٥﴾

(२५) फिर क्या दशा होगी जब उन्हें हम उस दिन एकत्रित करेंगे, जिसके आने में कोई शंका नहीं, और प्रत्येक व्यक्ति को अपने किये का पूर्ण प्रतिकार दिया जायेगा। और उन पर अत्याचार न किया जायेगा ।[2]

قُلِ اللَّهُمَّ مَالِكَ الْمُلْكِ تُؤْتِي الْمُلْكَ مَن تَشَاءُ وَتَنزِعُ الْمُلْكَ مِمَّن تَشَاءُ وَتُعِزُّ مَن تَشَاءُ وَتُذِلُّ مَن تَشَاءُ بِيَدِكَ الْخَيْرُ إِنَّكَ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ ﴿٢٦﴾

(२६) आप कह दीजिए, ऐ अल्लाह ! हे सम्पूर्ण जगत के स्वामी ! तू जिसे चाहे राज्य दे और जिससे चाहे राज्य छीन ले और तू जिसे चाहे सम्मान दे और जिसे चाहे अपमानित करदे तेरे ही हाथों में सारी भलाईयाँ हैं ।[3] निःसंदेह तू प्रत्येक चीज़ पर सामर्थ्य रखता है।

---

[1] अल्लाह की किताब (धर्मशास्त्र) को न मानने एवं उससे विमुखता के कारण उनका यह मिथ्यापूर्ण विचार था कि वह नरक में जायेंगे ही नहीं तथा यदि गये भी तो कुछ दिनों के लिये जायेंगे। और इन्हीं काल्पनिक बातों ने उन्हें धोखे एवं भ्रान्ति में डाल रखा है।

[2]प्रलय के दिन उनके यह दावे तथा भ्रम कुछ काम नहीं आयेंगे एवं अल्लाह स्पष्ट रूप से न्याय करेगा तथा प्रत्येक प्राणी को पूरा-पूरा प्रतिफल प्रदान करेगा, किसी पर अत्याचार नहीं होगा।

[3]इस आयत में अल्लाह के अपार सामर्थ्य तथा शक्ति का वर्णन है राजा को रंक तथा रंक को राजा बना देने का अधिकार उसी को है الخير بيدك के स्थान पर بيدك الخير (सूचना की प्रथमिकता के साथ) से तात्पर्य विशेषता दिखाना है, अर्थात भलाईयाँ मात्र तेरे ही हाथ में हैं, तेरे सिवाय कोई भलाई नहीं दे सकता। शर (बुराई) का (उत्पत्ति कर्ता) भी यद्यपि अल्लाह ही है परन्तु यहाँ मात्र ख़ैर (भलाई) का वर्णन किया गया। शर (बुराई) का नहीं इसलिये कि भलाई मात्र अल्लाह की कृपा है इसके विपरीत बुराई इन्सान के अपने कर्म का प्रतिफल है जो उसे मिलता है अथवा इसलिये कि बुराई भी उसके भाग्य लेख का एक अंश है जिसमें भलाई इस प्रकार है कि अल्लाह के सभी कार्य भले हैं। (फ़तहुल क़दीर)

(२७) तू ही रात को दिन में प्रवेशित करता है और दिन को रात में प्रविष्ट करता है।[1] तू ही निर्जीव से जीव पैदा करता है,[2] तू ही है कि जिसे चाहता है अंगणित जीविका प्रदान करता है।

تُوْلِجُ الَّيْلَ فِي النَّهَارِ وَ تُوْلِجُ النَّهَارَ فِي الَّيْلِ وَتُخْرِجُ الْحَيَّ مِنَ الْمَيِّتِ وَتُخْرِجُ الْمَيِّتَ مِنَ الْحَيِّ وَتَرْزُقُ مَنْ تَشَاءُ بِغَيْرِ حِسَابٍ ﴿٢٧﴾

(२८) मोमिनों को चाहिए कि ईमानवालों को छोड़कर काफ़िरों कोअपना मित्र न बनायें।[3]

لَا يَتَّخِذِ الْمُؤْمِنُوْنَ الْكٰفِرِيْنَ اَوْلِيَاءَ مِنْ دُوْنِ الْمُؤْمِنِيْنَ

---

[1]रात को दिन में और दिन को रात में प्रवेश देने का अर्थ मौसम का बदलना है। एक मौसम में रात लम्बी होती है, तो दिन छोटा है और दूसरे मौसम में इसके विपरीत दिन लम्बा होता है और रात छोटी हो जाती है। अर्थात कभी रात का भाग दिन में और दिन का भाग रात में प्रविष्ट कर देता है। जिससे रात और दिन छोटे बड़े हो जाते हैं।

[2]जैसे वीर्य (निर्जीव) पहले जीवित व्यक्ति से निकलता है और फिर उस निर्जीव (वीर्य) से मनुष्य। इसी प्रकार निर्जीव अण्डे से जीवित मुर्गी और फिर जीवित मुर्गी से निर्जीव अण्डा अथवा काफ़िर से मोमिन और मोमिन से काफ़िर पैदा करता है। कुछ कथनों में है कि आदरणीय मुआज़ रज़ी अल्लाह अन्हु ने *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* से अपने ऊपर ऋण की शिकायत की तो आप *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फरमाया : कि तुम आयत قل اللهم إلخ पढ़कर यह दुआ करो।

«رَحْمٰنَ الدُّنْيَا وَرَحِيمَهُمَا! تُعْطِي مَنْ تَشَاءُ مِنْهُمَا وَتَمْنَعُ مَنْ تَشَاءُ، اِرْحَمْنِي رَحْمَةً تُغْنِينِي بِهَا عَنْ رَحْمَةِ مَنْ سِوَاكَ، اللَّهُمَّ أَغْنِنِي مِنَ الْفَقْرِ، وَاقْضِ عَنِّي الدَّيْنَ».

एक दूसरे कथन में है कि "यह ऐसी दुआ है कि तुम पर ओहद (पर्वत जो मदीने के उत्तर दिशा में पर्वतीय श्रृंखला है) जितना भी ऋण हो तो अल्लाह तआला उसको अदा करने का प्रवन्ध तुम्हारे लिये कर देगा।" (मजमउज्जवायेद १०/१८६)

[3]औलिया, वली का बहुवचन है। वली ऐसे मित्र को कहते हैं जिससे हार्दिक प्रेम तथा विशेष सम्बन्ध हो। जैसे अल्लाह तआला ने अपने आपको ईमानवालों का वली कहा है।

﴿اللَّهُ وَلِيُّ الَّذِينَ ءَامَنُوا﴾

"अल्लाह ईमानवालों का वली है।" (*अल-बकर:-*२५७)

अर्थात ईमानवालों को एक-दूसरे से प्रेम तथा विशेष सम्बन्ध है और वे आपस में एक-दूसरे के वली (मित्र) हैं। अल्लाह तआला ने यहाँ पर ईमानवालों को इस बात से कठोरता से मना किया है कि वह काफ़िरों को अपना मित्र न बनायें। क्योंकि काफ़िर अल्लाह तआला के भी शत्रु हैं और ईमानवालों के भी शत्रु हैं। तो उनको मित्र बनाने का प्रश्न भी किस प्रकार से उठ सकता है ? इसीलिए अल्लाह तआला ने इस विषय को क़ुरआन करीम में कई स्थान पर स्पष्टरूप से वर्णित किया है। ताकि ईमानवाले काफ़िर से मित्रता और विशेष सम्बन्ध स्थापित न करें। परन्तु आवश्यकतानुसार उनसे सन्धि हो सकती है और व्यापारिक लेन-देन भी। इसी प्रकार जो काफ़िर मुसलमानों के शत्रु न हों, उनसे अच्छा

وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ فَلَيْسَ مِنَ اللّٰهِ فِيْ شَيْءٍ اِلَّآ اَنْ تَتَّقُوْا مِنْهُمْ تُقٰىةً ۭ وَيُحَذِّرُكُمُ اللّٰهُ نَفْسَهٗ ۭ وَاِلَى اللّٰهِ الْمَصِيْرُ ۝۲۸

और जो ऐसा करेगा वह अल्लाह (तआला) की किसी पक्ष में नहीं, परन्तु यह कि उनके (आतंक से) किसी प्रकार की रक्षा का लक्ष्य हो ।[1] और अल्लाह (तआला) स्वयं तुम्हें अपने आप से डरा रहा है और अल्लाह (तआला) ही की ओर लौटकर जाना है ।

قُلْ اِنْ تُخْفُوْا مَا فِيْ صُدُوْرِكُمْ اَوْ تُبْدُوْهُ يَعْلَمْهُ اللّٰهُ ۭ وَيَعْلَمُ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ وَاللّٰهُ عَلٰي كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝۲۹

(२९) कह दीजिए कि चाहे तुम अपने हृदय की बातें छिपाओ अथवा स्पष्ट करो, अल्लाह (तआला) सबको जानता है, आकाशों और धरती में जो कुछ है सब उसे मालूम है, अल्लाह (तआला) प्रत्येक वस्तु पर प्रभुत्वशाली है ।

يَوْمَ تَجِدُ كُلُّ نَفْسٍ مَّا عَمِلَتْ مِنْ خَيْرٍ مُّحْضَرًا ۚۖ وَّمَا عَمِلَتْ مِنْ سُوْۗءٍ ۚ تَوَدُّ لَوْ اَنَّ بَيْنَهَا وَبَيْنَهٗٓ اَمَدًۢا بَعِيْدًا ۭ وَيُحَذِّرُكُمُ اللّٰهُ نَفْسَهٗ ۭ وَاللّٰهُ رَءُوْفٌۢ بِالْعِبَادِ ۝۳۰

(३०) जिस दिन प्रत्येक प्राणी (व्यक्ति) अपने किये सुकर्म तथा कुकर्म को उपस्थिति पायेगा, कामना करेगा कि काश ! उसके और पाप के बीच बहुत दूरी होती । अल्लाह (तआला) अपने आप से डरा रहा है और अल्लाह (तआला) अपने भक्तों पर अत्याधिक कृपालु है ।

قُلْ اِنْ كُنْتُمْ تُحِبُّوْنَ اللّٰهَ فَاتَّبِعُوْنِيْ

(३१) कह दीजिए ! यदि तुम अल्लाह (तआला) से प्रेम करते हो, तो मेरा अनुसरण करो ।[2]

व्यवहार व शिष्टाचार उचित भी है । (जिसका सविस्तार वर्णन सूरः *मुमतहिनः* में है) क्योंकि यह सभी बातें मित्रता तथा प्रेम से भिन्न हैं ।

[1]यह आज्ञा उन मुसलमानों के लिए है, जो किसी काफ़िर राज्य में रहते हों और उनसे मित्रता व्यक्त किये बिना उनके आतंक से बचना असम्भव न हो, तो वह उनसे मौखिक मित्रता कर सकते हैं ।

[2]यहूदियों और इसाईयों दोनों का यह दावा था कि हम अल्लाह तआला से और अल्लाह तआला हमसे प्रेम करता है । विशेष रूप से इसाईयों ने आदरणीय ईसा और मरियम *अलैहिमास्सलाम* के आदर तथा प्रेम में इतना अतिश्योक्ति कर दिया कि उन्हें पूज्य देव के

يُحْبِبْكُمُ اللّٰهُ وَيَغْفِرْ لَكُمْ ذُنُوْبَكُمْ ۭ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝٣١

स्वयं अल्लाह (तआला) तुमसे प्रेम करेगा और तुम्हारे पाप क्षमा कर देगा ।[1] और अल्लाह (तआला) अत्यधिक क्षमाशील कृपालु है ।

قُلْ اَطِيْعُوا اللّٰهَ وَالرَّسُوْلَ ۚ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَاِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ الْكٰفِرِيْنَ ۝٣٢

(३२) कह दीजिये कि अल्लाह (तआला) और रसूल की आज्ञा का पालन करो, यदि वह मुँह फेर लें, तो नि:संदेह अल्लाह (तआला) काफ़िरों को मित्र नहीं रखता ।[2]

स्थान पर पदासीन कर दिया इसके विषय में भी उनका विचार था कि इसके द्वारा हम अल्लाह की निकटता तथा प्रसन्नता के अधिकारी बनना चाहते हैं । अल्लाह तआला ने फ़रमाया : कि उनके दावों तथा स्वयं गढ़ी गयी विधियों से अल्लाह की प्रसन्नता तथा प्रेम नहीं प्राप्त किया जा सकता । उसका मात्र एक मार्ग यह है कि मेरे अन्तिम पैग़म्बर पर ईमान लाओ और उसका अनुसरण करो । इस आयत ने उन सभी प्रेम के दावेदारों के लिए एक कसौटी और माप उपलब्ध करा दिया है कि अल्लाह के प्रेम का अर्थ यदि *मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के अनुसरण द्वारा यह फल प्राप्त करना चाहा है, तो फिर सफल है और अपने दावे का सच्चा है वरन् वह झूठा भी है और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल भी । *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* का कथन है ।

«مَنْ عَمِلَ عَمَلًا لَيْسَ عَلَيْهِ أَمْرُنَا فَهُوَ رَدٌّ»

"जिसने ऐसा काम किया जिससे हमारा सम्बन्ध नहीं है अर्थात हमारे मार्ग से भिन्न है, तो वह बेकार है ।" (मुत्तफ़क़ अलैह)

[1]अर्थात *रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* का अनुकरण करने के कारण केवल तुम्हारे पाप को ही नहीं क्षमा किया जायेगा बल्कि तुम अपने प्रेमी के प्रेमी बन जाओगे । तो यह कितना श्रेष्ठ स्थान है कि अल्लाह के समक्ष एक मनुष्य अल्लाह के प्रेमी का स्थान प्राप्त कर ले ।

[2]इस आयत में अल्लाह के आज्ञा पालन के साथ-साथ *रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* का अनुकरण करने की फिर से पुनर्रावृत्ति करके यह स्पष्ट किया गया है कि अब बिना *मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* का अनुकरण किये मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता । और इसका नकारना कुफ़्र है । और ऐसे काफ़िरों को अल्लाह तआला पसन्द नहीं करता । चाहे वह अल्लाह के प्रेम और निकटता के कितने ही दावेदार हों । इस आयत में हदीस के न मानने वालों और *रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* का

(३३) नि:संदेह अल्लाह (तआला) ने सभी लोगों में से आदम को और नूह को और इब्राहीम के परिवार और इमरान के परिवार को चुन लिया ।[1]

إِنَّ اللَّهَ اصْطَفَىٰ آدَمَ وَنُوحًا وَآلَ إِبْرَاهِيمَ وَآلَ عِمْرَانَ عَلَى الْعَالَمِينَ ﴿٣٣﴾

(३४) कि ये सभी आपस में एक-दूसरे के वंश से हैं ।[2] और अल्लाह (तआला) सुनता और जानता है ।

ذُرِّيَّةً بَعْضُهَا مِن بَعْضٍ ۗ وَاللَّهُ سَمِيعٌ عَلِيمٌ ﴿٣٤﴾

अनुकरण न करने वालों की कटु आलोचना की गयी है क्योंकि दोनों ही ने अपने-अपने रूप से ऐसा कर्म करते हैं, जिसे यहाँ कुफ्र के समान बताया गया है ।

[1]नबियों के परिवार में दो इमरान हुए हैं । एक आदरणीय मूसा और हारून के पिता और दूसरे आदरणीय मरियम के पिता । इस आयत में अधिकतर व्याख्याकारों के अनुसार दूसरे इमरान से तात्पर्य है, और इस परिवार को यह सर्वश्रेष्ठ सम्मानित स्थान आदरणीय मरियम और उनके पुत्र आदरणीय ईसा के कारण प्राप्त हुआ । और आदरणीय मरियम की माता का नाम व्याख्याकारों ने *"हन्ना पुत्री फाक़ूज"* लिखा है । (तफ़सीर कुर्तबी तथा इब्ने कसीर) इस आयत में अल्लाह तआला ने इमरान के परिवार के अतिरिक्त अन्य दो परिवारों का वर्णन किया है । जिनको अल्लाह तआला ने उनके समय में अन्य परिवारों से श्रेष्ठता प्रदान की है । इनमें से सर्वप्रथम आदरणीय आदम हैं, जिन्हें अल्लाह ने अपने हाथों से बनाया और उनमें अपनी ओर से आत्मा फूँकी, उनके समक्ष फ़रिश्तों से दण्डवत (सजदा) कराया, सभी चीज़ों का ज्ञान उन्हें प्रदान किया और उनका निवास स्वर्ग में बनाया, जहाँ से उन्हें धरती पर भेजा गया, जिसमें उसकी बहुत-सी बुद्धिमतायें थीं । द्वितीय आदरणीय नूह *अलैहिस्सलाम* हैं, उन्हें उस समय रसूल बनाकर भेजा गया, जब लोग अल्लाह को छोड़कर मूर्तिपूजक बन गये थे, उन्हें दीर्घ आयु प्रदान की गयी, उन्होंने अपने समाज के लोगों को साढ़े नौ सौ वर्ष चेतावनी दी, परन्तु कुछ लोगों को छोड़कर आप पर कोई ईमान नहीं लाया । अन्ततः आपकी प्रार्थना के कारण ईमानवालों को छोड़कर शेष सभी को डुबो दिया गया । इब्राहीम की सन्तान को यह श्रेष्टता प्रदान की गयी कि उनमें ही सभी नबियों की श्रृंखला स्थापित किया और अधिकतर पैग़म्बर आपके वंश से थे । अन्त में सर्वश्रेष्ठ और आदरणीय *मोहम्मद रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* भी आदरणीय इब्राहीम के पुत्र इस्माईल की वंश श्रृंखला में हुए ।

[2] अथवा दूसरे अर्थ हैं धर्म में एक-दूसरे के सहायक ।

إِذْ قَالَتِ امْرَأَتُ عِمْرَانَ رَبِّ إِنِّي نَذَرْتُ لَكَ مَا فِي بَطْنِي مُحَرَّرًا فَتَقَبَّلْ مِنِّي ۖ إِنَّكَ أَنتَ السَّمِيعُ الْعَلِيمُ ﴿٣٥﴾

(३५) जब इमरान की पत्नी ने कहा कि हे मेरे पालनहार ! मेरे गर्भ में जो कुछ भी है उसे तेरे नाम से स्वतन्त्र करने[1] की मनौती मान ली, तो तू इसे स्वीकार कर, नि:संदेह तू अच्छी प्रकार से सुनने वाला तथा जानने वाला है।

فَلَمَّا وَضَعَتْهَا قَالَتْ رَبِّ إِنِّي وَضَعْتُهَا أُنثَىٰ وَاللَّهُ أَعْلَمُ بِمَا وَضَعَتْ وَلَيْسَ الذَّكَرُ كَالْأُنثَىٰ ۖ وَإِنِّي سَمَّيْتُهَا مَرْيَمَ وَإِنِّي أُعِيذُهَا بِكَ وَذُرِّيَّتَهَا مِنَ الشَّيْطَانِ الرَّجِيمِ ﴿٣٦﴾

(३६) जब शिशु को जन्म दिया, तो कहने लगी प्रभु ! मुझे तो पुत्री हुई है, अल्लाह (तआला) अच्छी प्रकार से जानता है कि क्या जन्म दिया है, और पुत्र, पुत्री के समान नहीं।[2] मैंने उसका नाम मरियम रखा है।[3] मैं उसे और उसकी सन्तान को धिक्कारे शैतान से तेरी शरण में देती हूँ।[4]

---

[1] محررا (तेरे नाम स्वतन्त्र) का अर्थ तेरी धर्मस्थली की सेवा के लिये अर्पित करती हूँ।

[2] इस वाक्य में निराशा का स्पष्टीकरण है और याचना भी। निराशा इस प्रकार कि मेरी आशा के विपरीत पुत्री हुई है। और याचना इस प्रकार कि मनौती के अनुसार मैं तेरी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये एक सेवक अर्पण करना चाहती थी, जिस कार्य के लिए एक पुरूष ही उचित था, परन्तु अब जो कुछ है, तू उसे जानता ही है, उसे स्वीकार कर ले। (फ़तहुल क़दीर)

[3] हाफ़िज इब्ने कसीर ने इससे और *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की हदीसों से यह भावार्थ निकालते हुए लिखा है कि सन्तान का नाम जन्म के प्रथम दिन ही रखना चाहिये और सातवें दिन नाम रखने वाली हदीस जीर्ण सिद्ध किया है। परन्तु हाफ़िज इब्ने क़य्यिम ने सभी हदीसों पर विवाद करते हुए अन्त में लिखा है कि पहले दिन, तीसरे दिन और सातवें दिन नाम रखा जा सकता है। इसमें गुंजाईश है। (तोहफ़तुल मोदूद)

[4] अल्लाह तआला ने यह प्रार्थना स्वीकार की जैसाकि सहीह हदीसों में है कि जब बच्चा जन्म लेता है, तो शैतान उसे छूता है, जिससे वह चीख़ता है। परन्तु अल्लाह तआला ने आदरणीय मरियम तथा उनके पुत्र ईसा को इससे सुरक्षित रखा है।

«مَا مِنْ مَوْلُودٍ يُولَدُ إِلَّا مَسَّهُ الشَّيْطَانُ حِينَ يُولَدُ، فَيَسْتَهِلُّ صَارِخاً مِنْ مَسِّهِ إِيَّاهُ، إِلَّا مَرْيَمَ وَابْنَهَا».

(सहीह बुख़ारी, किताबुल तफ़सीर, मुस्लिम किताबुल फ़ज़ायल)

(३७) उसे उसके प्रभु ने अच्छी प्रकार से स्वीकार किया और उसका सर्वश्रेष्ठ पालन-पोषण कराया। उसका संरक्षक ज़करिया को नियुक्त किया[1] जब कभी ज़करिया उनके कमरे में जाते तो उनके पास जीविका रखी हुई पाते थे ।[2] वह पूछते थे कि हे मरियम ! तुम्हारे पास यह रोज़ी (जीविका) कहाँ से आयी ? वह उत्तर देती कि यह अल्लाह (तआला) के पास से है निःसंदेह अल्लाह (तआला) जिसे चाहे अनगिनत जीविका प्रदान करे।

فَتَقَبَّلَهَا رَبُّهَا بِقَبُولٍ حَسَنٍ وَأَنْبَتَهَا نَبَاتًا حَسَنًا وَكَفَّلَهَا زَكَرِيَّا ۖ كُلَّمَا دَخَلَ عَلَيْهَا زَكَرِيَّا الْمِحْرَابَ وَجَدَ عِنْدَهَا رِزْقًا ۖ قَالَ يَا مَرْيَمُ أَنَّىٰ لَكِ هَٰذَا ۖ قَالَتْ هُوَ مِنْ عِنْدِ اللَّهِ ۖ إِنَّ اللَّهَ يَرْزُقُ مَنْ يَشَاءُ بِغَيْرِ حِسَابٍ ﴿٣٧﴾

---

[1]आदरणीय ज़करिया मरियम के मौसा भी थे, इसलिए भी। इसके अतिरिक्त अपने समय में पैग़म्बर होने के कारण सर्वश्रेष्ठ संरक्षक बन सकते थे, जो कि आदरणीय मरियम की आर्थिक आवश्यकताओं, तथा शैक्षिक एवं नैतिक प्रशिक्षण का उचित प्रबन्ध कर सकते थे।

[2] मेहराब से तात्पर्य वह कमरा है जिसमें आदरणीय मरियम रहा करती थीं। रिज़क़ से तात्पर्य फल आदि हैं। यह फल बिना मौसम के हुआ करते थे अर्थात गर्मी के फल सर्दियों में और सर्दियों के फल गर्मियों में उनके कमरे में होते थे। दूसरी आवश्यक बात इन चीज़ को भौतिक रूप से आदरणीय ज़करिया के अतिरिक्त कोई इस प्रकार के फल उनके कमरे में नहीं ला सकता था, और वह इन फलों को लायें नहीं होते, इस कारण चकित होकर यह पूछते कि यह कहाँ से आये ? आदरणीय मरियम ने उन्हें उत्तर दिया अल्लाह की ओर से अर्थात यह आदरणीय मरियम का चमत्कार था। मोजज़: और करामत अप्राकृतिक अथवा असम्भव कार्य के होने को कहते हैं। अर्थात जो प्रत्यक्ष एवं सामान्य संसाधन के विपरीत हों। यह चमत्कार किसी नबी के हाथ पर प्रकाशित हो तो मोजज़: महात्मा (वली) के हाथ से हो, तो करामत कहा जाता है। यह दोनों सत्य हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु यह दोनों अल्लाह के आदेश और उसके चाहने से होते हैं। नबी अथवा महात्मा (वली)के अधिकार में नहीं कि वह स्वयं अपनी इच्छा से कोई मोजज़ा अथवा करामत कर दिखावें। इसलिये कि मोजज़ा अथवा करामत इस बात को सिद्ध करते हैं कि यह आदरणीय व्यक्ति अल्लाह तआला के समक्ष एक विशेष स्थान रखते हैं। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि इन महानुभावों को यह अधिकार है कि अपनी इच्छानुसार संसार में जो चाहें करें। जैसाकि अहले बिदअत महात्माओं (औलिया) के करामतों से जनता को यही धोखा दे कर उन्हें शिर्क पर विश्वास करने को बाध्य कर रहे हैं, इसका अन्य विस्तार पूर्वक विवरण अन्य स्थानों पर मोजेज़ात के विषय में आयेगा।

هُنَالِكَ دَعَا زَكَرِيَّا رَبَّهُۥ قَالَ رَبِّ هَبْ لِي مِن لَّدُنكَ ذُرِّيَّةً طَيِّبَةً إِنَّكَ سَمِيعُ الدُّعَاءِ ﴿٣٨﴾

(३८) उसी स्थान पर ज़करिया (अलैहिस्सलाम) ने अपने पालनहार से प्रार्थना की, कहा कि ऐ मेरे पालनहार । मुझे अपने पास से पवित्र सन्तान प्रदान कर, नि:संदेह तू प्रार्थना सुनने वाला है ।

فَنَادَتْهُ الْمَلَائِكَةُ وَهُوَ قَائِمٌ يُصَلِّي فِي الْمِحْرَابِ أَنَّ اللَّهَ يُبَشِّرُكَ بِيَحْيَىٰ مُصَدِّقًا بِكَلِمَةٍ مِّنَ اللَّهِ وَسَيِّدًا وَحَصُورًا وَنَبِيًّا مِّنَ الصَّالِحِينَ ﴿٣٩﴾

(३९) फिर फ़रिश्तों ने पुकारा जब कि वह कमरे में खड़े नमाज पढ़ रहे थे कि अल्लाह (तआला) तुझे यहिया की अवश्य सम्भावी शुभ सूचना देता है ।[1] जो अल्लाह (तआला) के कलमे की पुष्टि करने वाला,[2] मुखिया परहेज़गार और पूर्ण संयम और नबी होगा सत्कर्मियों में से ।

قَالَ رَبِّ أَنَّىٰ يَكُونُ لِي غُلَامٌ وَقَدْ بَلَغَنِيَ الْكِبَرُ وَامْرَأَتِي عَاقِرٌ ۖ قَالَ كَذَٰلِكَ اللَّهُ يَفْعَلُ مَا يَشَاءُ ﴿٤٠﴾

(४०) कहने लगे हे मेरे प्रभु ! मेरे यहाँ पुत्र कैसे होगा मैं अत्यन्त बूढ़ा हो गया हूँ और मेरी पत्नी बाँझ है, कहा, इसी प्रकार अल्लाह (तआला) जो चाहे करता है ।

---

[1]बिना मौसम के फल देखकर आदरणीय ज़करिया के दिल में (अपने बुढ़ापे तथा अपनी पत्नी के बाँझ होने पर भी) यह आशा पैदा हुई कि काश अल्लाह तआला उन्हें भी इसी प्रकार सन्तान प्रदान कर दे । इसी कारण उनके हाथ प्रार्थना के लिये उठ गये, जिसे अल्लाह तआला ने स्वीकार भी कर लिया और प्रदान भी किया ।

[2]अल्लाह के कलमें की पुष्टि से तात्पर्य आदरणीय ईसा का अनुमोदन करेगा । अर्थात आदरणीय यहिया आदरणीय ईसा से बड़े हुए । दोनों आपस में मौसेरे भाई थे । दोनों ने एक-दूसरे का अनुमोदन किया । سيدا का अर्थ है सरदार, حصورا का अर्थ है पाप से विशुद्ध अर्थात पाप के निकट न गये हों, इसका तात्पर्य यह कि उनको पाप से रोक दिया गया हो । अर्थात हसूर, महसूर के अर्थ में लिया गया है । कुछ ने इसका अर्थ नपुंसक किया है । परन्तु यह ठीक नहीं है । क्योंकि यह एक त्रुटि है, जबकि यहाँ उनकी विशेषता, सम्मान के रूप में प्रयोग हुआ है ।

(४१) कहने लगे प्रभु ! मेरे लिए इसका कोई चिन्ह बना दे, कहा, चिन्ह यह है कि तीन दिन तक तू लोगों से बात न कर सकेगा, केवल इशारे से समझायेगा, तू अपने प्रभु का जप अधिक कर और प्रातः, संध्या उसी की महिमा का वर्णन कर ।[1]

قَالَ رَبِّ اجْعَلْ لِّيْٓ اٰيَةً ۭ قَالَ اٰيَتُكَ اَلَّا تُكَلِّمَ النَّاسَ ثَلٰثَةَ اَيَّامٍ اِلَّا رَمْزًا ۭ وَاذْكُرْ رَّبَّكَ كَثِيْرًا وَّسَبِّحْ بِالْعَشِيِّ وَالْاِبْكَارِ ﴿٤١﴾

(४२) और जब फ़रिश्तों ने कहा, हे मरियम! अल्लाह (तआला) ने तुझे निंवाचित कर लिया और तुझे पवित्र कर दिया, और सारे संसार की स्त्रियों में तेरा चुनाव कर लिया ।[2]

وَاِذْ قَالَتِ الْمَلٰۗىِٕكَةُ يٰمَرْيَمُ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰىكِ وَطَهَّرَكِ وَاصْطَفٰىكِ عَلٰي نِسَاۗءِ الْعٰلَمِيْنَ ﴿٤٢﴾

(४३) हे मरियम ! तू अपने पोषक के आदेशों का पालन और दण्डवत (सजदा) कर और

يٰمَرْيَمُ اقْنُتِىْ لِرَبِّكِ وَاسْجُدِيْ

---

[1]बुढ़ापे में चमत्कारिक रूप से पुत्र के जन्म लेने की शुभ सूचना सुनकर उनकी उत्सुकता में वृद्धि के कारण लक्षण मालूम करना चाहा। अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि तीन दिन के लिए तेरी आवाज़ बन्द हो जायेगी, जो मेरी ओर से लक्षण होगा। परन्तु तू इस मौन की स्थिति में अधिकता से सुबह-शाम अल्लाह की महिमागान कर, ताकि वह वरदान जो तुझे अपने प्रभु से मिलने वाला है, उसकी कृतज्ञता व्यक्त कर सके। इसका अर्थ यह हुआ कि अल्लाह तआला तुम्हारी आवश्यकतानुसार चीज़ें प्रदान करे, तो उसकी कृतज्ञता व्यक्त करते रहो।

[2]आदरणीय मरियम का यह सम्मान और मान उनकी अपनी विशेषता और उनके युग के एतबार से है। क्योंकि सहीह हदीसों में आदरणीय मरियम के साथ आदरणीय ख़दीजा को भी خير نسائها (सभी स्त्रियों में श्रेष्ठ) कहा गया है। और कुछ हदीसों में चार स्त्रियों को पूर्ण कहा गया है । आदरणीय मरियम, आदरणीय आसिया (फ़िरऔन की पत्नी), आदरणीय ख़दीजा तथा आदरणीय आयशा, एवं आदरणीय आयशा के विषय में कहा गया है कि उनकी श्रेष्ठता स्त्रियों में वैसे ही है, जैसे सरीद (हलुवा अथवा खीर) को सभी खानों में श्रेष्ठता है । (इब्ने कसीर) और त्रिमजी में आदरणीय फ़ातिमा पुत्री *मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* को भी श्रेष्ठ स्त्रियों में सम्मिलित लिया गया है। (इब्ने कसीर) इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि उपरोक्त वर्णित स्त्रियों को अन्य स्त्रियों में श्रेष्ठता तथा महानता प्रदान की गयी है कि वे अपने-अपने युग में श्रेष्ठता रखती हैं।

وَارْكَعِي مَعَ الرّٰكِعِينَ ﴿٤٣﴾

झुकने वालों (रूकुऊ करने वालों) के साथ झुका कर (रूकुऊ कर)।

ذٰلِكَ مِنْ أَنْبَاءِ الْغَيْبِ نُوحِيهِ إِلَيْكَ ۚ وَمَا كُنْتَ لَدَيْهِمْ إِذْ يُلْقُونَ أَقْلَامَهُمْ أَيُّهُمْ يَكْفُلُ مَرْيَمَ ص وَمَا كُنْتَ لَدَيْهِمْ إِذْ يَخْتَصِمُونَ ﴿٤٤﴾

(४४) यह परोक्ष की सूचनाओं में से है, जिसे हम आपको उपदेश कर रहे हैं तब आप उस समय उनके पास न थे जब वह अपने क़लम डाल रहे थे कि उनमें से मरियम की परवरिश कौन करेगा ? और न आप उनके झगड़ों के समय उनके पास थे।[1]

إِذْ قَالَتِ الْمَلٰئِكَةُ يٰمَرْيَمُ إِنَّ اللّٰهَ يُبَشِّرُكِ بِكَلِمَةٍ مِّنْهُ ۖ اسْمُهُ الْمَسِيحُ عِيسَى ابْنُ مَرْيَمَ

(४५) जब फ़रिश्तों ने कहा, हे मरियम ! तुझे अल्लाह (तआला) अपने एक शब्द[2] की शुभ सूचना देता है कि जिसका नाम मसीह[3]

---

[1]आजकल अहले बिदअत ने नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की मान-मर्यादा में अतिश्योक्ति करते हुए, उन्हें अल्लाह तआला के समान परोक्ष का ज्ञानी और सर्वव्यापी मानने का विश्वास गढ़ लिया है। इस आयत में इन दोनों बातों का स्पष्ट खण्डन हो रहा है। यदि आप *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* को परोक्ष का ज्ञान होता, तो अल्लाह तआला यह न फ़रमाता कि हम परोक्ष की सूचनायें आपको दे रहे हैं क्योंकि जिसको पहले ही से यह ज्ञान हो, उससे ऐसे नहीं कहा जाता, और इसी प्रकार सर्वव्यापी होता है, उससे यह नहीं कहा जाता कि आप उस समय वहाँ नहीं थे। लोग नाम लाटरी की भाँति निकाल रहे थे। लाटरी से नाम निकालने की आवश्यकता इसलिये और भी हुई कि आदरणीय मरियम के संरक्षक वनने के कुछ अन्य लोग भी इच्छुक थे। ﴿ذٰلِكَ مِنْ أَنْبَاءِ الْغَيْبِ نُوحِيهِ إِلَيْكَ﴾ से *नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की रिसालत तथा आप की सत्यता का प्रमाणित करना भी है। क्योंकि ईशवाणी (वह्यी) केवल पैग़म्बर पर आती है किसी अन्य व्यक्ति पर नहीं आती है।

[2]आदरणीय ईसा को कलमा अर्थात अल्लाह का कलमा इस लिये कहा गया है कि उनका जन्म एक चमत्कारिक रूप से सामान्य मानव जन्म विधि के प्रतिकूल बिना पिता के अल्लाह की विशेष सामर्थ्य और उसके कथन كُنْ (हो जा) की उत्पत्ति है।

[3]मसीह, "*मसह*" धातु से बना है और مَسَحَ الأرض का अर्थ धरती पर अधिक भ्रमण कर्ता है अथवा इसका अर्थ हाथ फेरने वाला है, क्योंकि आप हाथ फेर कर रोगियों को अल्लाह की आज्ञा से स्वस्थ कर देते थे। तथा प्रलय के निकट प्रकट होने वाले दज्जाल को मसीह इसलिये कहा जाता है उसकी एक आँख कानी होगी अथवा वह भी जगत में अधिक

وَجِيْهًا فِي الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ وَمِنَ الْمُقَرَّبِيْنَ ﴿٤٥﴾

पुत्र मरियम है। जो दुनियाँ और परलोक में सम्मानित है। और वह मेरे निकटवर्तियों में से है।

وَيُكَلِّمُ النَّاسَ فِي الْمَهْدِ وَكَهْلًا وَّمِنَ الصّٰلِحِيْنَ ﴿٤٦﴾

(४६) वह लोगों से पालने में बात करेगा और अधेड़ आयु में भी।[1] और वह सदाचारियों में से होगा।

قَالَتْ رَبِّ اَنّٰى يَكُوْنُ لِيْ وَلَدٌ وَّلَمْ يَمْسَسْنِيْ بَشَرٌ ؕ قَالَ كَذٰلِكِ اللّٰهُ يَخْلُقُ مَا يَشَآءُ ؕ اِذَا قَضٰٓى

(४७) कहने लगी, "प्रभु ! मुझे पुत्र कैसे होगा ? यद्यपि मुझे किसी पुरूष ने स्पर्श भी नहीं किया है।" फ़रिश्ते ने कहा, "इसी प्रकार अल्लाह

भ्रमण करेगा तथा मक्का-मदीना एवं बैतुल मोक़द्दस के अतिरिक्त दुनियाँ के प्रत्येक स्थान पर जायेगा। इसलिये उसे मसीह दज्जाल कहा जाता है। (फ़तहुल क़दीर) सामान्य व्याख्याकारों ने सामान्यत: यही बात लिखी है। कुछ अन्य शोधकर्त्ताओं के अनुसार मसीह यहूदी तथा इसाईयों के विचार से पैग़म्बर को कहते हैं अर्थात उनकी यह परिभाषा प्रथम युग के पैग़म्बरों के लिए प्रयोग हुई है। दज्जाल को मसीह इस लिये कहा गया है क्योंकि यहूदियों को जिस अन्तिम क्रान्तिकारी मसीह की शुभ सूचना दी गई है। और जिसकी प्रतीक्षा अनुचित रूप से अब भी कर रहे हैं, वह दज्जाल इसी मसीह के नाम पर आयेगा अर्थात अपने आपको वही मसीह सिद्ध करेगा। परन्तु वह अपने इस दावे के अतिरिक्त अन्य दावों में धोखा-धड़ी का इतना बड़ा नमूना होगा कि आदि से अन्त तक उसकी कोई तुलना नहीं मिलेगी। इसलिये दज्जाल कहलायेगा। ईसा अजमी भाषा का शब्द है। कुछ के निकट यह अरबी और عـــاس और يعوس का विकृत रूप है। जिसका अर्थ राजनीतिक नेतृत्व के हैं। (कुर्तबी तथा फ़तहुल क़दीर)

[1]आदरणीय ईसा के (पालने) माँ की गोद में बातचीत करने का वर्णन स्वयं क़ुरआन करीम की सूर: मरियम में है। इसके अतिरिक्त सहीह हदीस में दो अन्य बच्चों के माँ की गोद में बात करने का वर्णन है। एक साहबे जुरैज और एक इस्राईली स्त्री का बच्चा। (सहीह बुख़ारी, किताबुल अम्बिया, बाबु मरियम)

अधेड़ आयु में बात करने का अभिप्राय कुछ ने यह लिया है कि जब बड़े होकर प्रकाशना एवं दूतत्व से सुशोभित किये जायेंगे, तथा कुछ ने कहा है कि आप प्रलय के निकट जब आकाश से उतरेंगे जैसाकि अहले सुन्नत का विश्वास है जो सही निरन्तर हदीसों से तर्क संगत है तो उस समय जो इस्लाम का प्रचार करेंगे वह बातें अभिप्राय हैं। (तफ़सीर इब्ने कसीर तथा क़ुर्तबी)

أَمْرًا فَإِنَّمَا يَقُولُ لَهُۥ كُن فَيَكُونُ ﴿٤٧﴾

(तआला) जो चाहे उत्पन्न करता है। जब कभी वह किसी कार्य को करना चाहता है। तो केवल कह देता है "हो जा," तो वह हो जाता है।"[1]

وَيُعَلِّمُهُ ٱلْكِتَٰبَ وَٱلْحِكْمَةَ وَٱلتَّوْرَىٰةَ وَٱلْإِنجِيلَ ﴿٤٨﴾

(४८) और अल्लाह (तआला) उसे लिखना[2], और बुद्धिमत्ता तथा तौरात एवं इंजील सिखायेगा।

وَرَسُولًا إِلَىٰ بَنِىٓ إِسْرَٰٓءِيلَ أَنِّى قَدْ جِئْتُكُم بِـَٔايَةٍ مِّن رَّبِّكُمْ ۖ أَنِّىٓ أَخْلُقُ لَكُم مِّنَ ٱلطِّينِ كَهَيْـَٔةِ ٱلطَّيْرِ فَأَنفُخُ فِيهِ فَيَكُونُ طَيْرًۢا بِإِذْنِ ٱللَّهِ ۖ وَأُبْرِئُ ٱلْأَكْمَهَ وَٱلْأَبْرَصَ وَأُحْىِ ٱلْمَوْتَىٰ بِإِذْنِ ٱللَّهِ ۖ وَأُنَبِّئُكُم بِمَا تَأْكُلُونَ وَمَا تَدَّخِرُونَ فِى بُيُوتِكُمْ

(४९) और वह इस्राईल की सन्तान का रसूल होगा, कि मैं तुम्हारे पास तुम्हारे प्रभु की निशानी लाया हूँ, मैं तुम्हारे लिए पक्षी के रूप के ही प्रकार का मिट्टी का पक्षी बनाता हूँ[3]। फिर उसमें फूँक मारता हूँ, तो वह अल्लाह (तआला) के आदेश से पक्षी बन जाता है और मैं अल्लाह (तआला) के आदेश से जन्म से अंधे को और कोढ़ी को स्वस्थ कर देता हूँ और मृतक को जीवित कर देता हूँ[4] और जो कुछ तुम खाओ और जो कुछ भी

---

[1]तुम्हारा आश्चर्य चकित होना उचित है, परन्तु अल्लाह तआला के सामर्थ्य के लिये यह कोई कठिन कार्य नहीं है। वह तो जब चाहे स्वाभाविक एवं प्रत्यक्ष साधना समाप्त करके, केवल كن (कुन) आदेश से क्षणभर में जो चाहे कर डाले।

[2]किताब (लेख) से तात्पर्य किताबत (लिखना) है, जैसाकि अनुवाद में लिया गया है अथवा इंजील एवं तौरात के अतिरिक्त कोई और किताब है, जिसका ज्ञान अल्लाह तआला ने उन्हें दिया।

[3] أخلق لكم أي أصور و أقدر لكم (क़ुर्तबी) यहाँ उत्पत्ति का अर्थ पैदा करना नहीं इस पर तो सामर्थ्य मात्र अल्लाह को है क्योंकि वही रचयिता है। यहाँ इसका अर्थ ऊपरी रूप रेखा वनाने के हैं।

[4] पुनः अल्लाह के आदेश से कहने से यही अर्थ है कि कोई व्यक्ति यह समझ वैठे कि मैं सृष्टा की विशेषताओं एवं गुणों को प्राप्त कर चुका हूँ। कदापि ऐसा नहीं, मैं तो उसका भक्त और रसूल हूँ। यह जो कुछ मेरे हाथ से हो रहा है, चमत्कार (मोजेज़ा) है, जो मात्र

إِنَّ فِي ذَٰلِكَ لَآيَةً لَّكُمْ إِن كُنتُم مُّؤْمِنِينَ ﴿٤٩﴾

तुम अपनें घरों में एकत्रित करो, मैं तुम्हें बता देता हूँ। इसमें तुम्हारे लिए बड़ी निशानी है। यदि तुम ईमानवाले हो।

وَمُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيَّ مِنَ التَّوْرَاةِ وَلِأُحِلَّ لَكُم بَعْضَ الَّذِي حُرِّمَ عَلَيْكُمْ ۚ وَجِئْتُكُم بِآيَةٍ مِّن رَّبِّكُمْ فَاتَّقُوا اللَّهَ وَأَطِيعُونِ ﴿٥٠﴾

(५०) और मैं तौरात की पुष्टि करने वाला हूँ, जो मेरे समक्ष है और मैं इसलिये आया हूँ कि तुम पर कुछ उन चीज़ों को हलाल करूँ, जो तुम पर हराम कर दी गयी हैं।[1] और मैं तुम्हारे पास तुम्हारे प्रभु की निशानी लाया हूँ, इसलिये तुम अल्लाह (तआला) से डरो और मेरा ही अनुकरण करो।

अल्लाह के आदेश से हो रहा है। इमाम इब्ने कसीर फ़रमाते हैं कि अल्लाह तआला ने प्रत्येक नबी को उसके समय और परिस्थितियों के अनुसार मोजज़े प्रदान किये, ताकि उसकी सत्यता और श्रेष्ठता स्पष्ट हो सके। आदरणीय मूसा के समय में जादू का बहुत ज़ोर था, उन्हें ऐसा मोजेज़ा प्रदान किया गया जिसके समक्ष बड़े-बड़े जादूगर अपना कार्यक्रम दिखानें में असफल रहे, जिससे उनके ऊपर आदरणीय मूसा की सत्यता स्पष्ट हो गयी, और वह ईमान ले आये। आदरणीय ईसा अलैहिस्सलाम के समय में औषधि और चिकित्सा का अधिक प्रचार हो रहा था, अतएव उन्हें मृतक को जीवित जन्मजात अंधे और कोढ़ी को स्वस्थ कर देने का मोजेजा प्रदान किया गया, जो कोई भी बड़े से बड़ा चिकित्सक अपनी कला के द्वारा करने की शक्ति नहीं रखता था। हमारे पैग़म्बर *नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के समय में कविता एवं साहित्य तथा भाषा और भाषण का ज़ोर था, अतएव उन्हें क़ुरआन जैसा भाषा-भाष्य और सर्वश्रेष्ठ साहित्य प्रदान किया गया। जिसकी तुलना दुनियाँ भर के साहित्यकार एवं कवि आज तक प्रस्तुत नहीं कर सकें और चुनौती देने पर भी नहीं प्रस्तुत कर सके और क़यामत (प्रलय) तक प्रस्तुत न कर सकेंगे। (इब्ने कसीर)

[1] इससे तात्पर्य या तो वह चीज़ें हैं, जो अल्लाह तआला ने दण्ड स्वरूप उनपर निषेध (हराम) कर दी थी अथवा फिर वह चीज़ें जो उनके धर्मज्ञानियों (आलिमों) ने स्वयं अपने ऊपर निषेध कर ली थी अल्लाह का आदेश नहीं था। (क़ुर्तुबी) अथवा ऐसी चीज़ भी हो सकती है, जो उनके धर्म ज्ञानियों ने अपने सोच-विचार से वर्जित कर रखी थीं। और सोंच-विचार में उनसे त्रुटि हुई और आदरणीय ईसा ने इन त्रुटियों को दूर करके उन्हें हलाल कर दिया। (इब्ने कसीर)

(५१) विश्वास करो ! मेरा और तुम्हारा स्वामी अल्लाह ही है, तुम सब उसी की अराधना करो। यही सीधी राह है।[1]

إِنَّ اللَّهَ رَبِّي وَرَبُّكُمْ فَاعْبُدُوهُ ۗ هَٰذَا صِرَاطٌ مُّسْتَقِيمٌ ﴿٥١﴾

(५२) परन्तु जब (आदरणीय) ईसा (अलैहिस्सलाम) ने उनका इंकार का आभास कर लिया।[2] तो कहने लगे अल्लाह (तआला) के मार्ग में मेंरी सहायता करने वाला कौन-कौन है।[3] हवारियों ने उत्तर दिया कि हम अल्लाह (तआला) के मार्ग में सहायक हैं।[4]

فَلَمَّا أَحَسَّ عِيسَىٰ مِنْهُمُ الْكُفْرَ قَالَ مَنْ أَنصَارِي إِلَى اللَّهِ ۖ قَالَ الْحَوَارِيُّونَ نَحْنُ أَنصَارُ اللَّهِ آمَنَّا بِاللَّهِ وَاشْهَدْ بِأَنَّا مُسْلِمُونَ ﴿٥٢﴾

---

[1]अर्थात अल्लाह की अराधना (इबादत) करने में और उसके समक्ष तुक्षता एवं विनती करने में मैं और तुम दोनों बराबर हैं। इसलिए सीधा मार्ग यह है कि एक अल्लाह की इबादत (अर्चना) की जाये और उसके प्रभुत्व में किसी को भी सम्मिलित न किया जाये।

[2]अर्थात ऐसी चालें और योजनायें एवं सशंकित कार्य जो कुफ्र अर्थात आदरणीय मसीह की रिसालत के इंकार का द्योतक थीं।

[3]बहुत से नबियों ने अपनी कौम के लोगों से तंग आकर वाह्य साधन स्वरूप अपनी कौम के शिष्ट व्यक्तियों से सहायता माँगी है। जैसाकि स्वयं *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने प्रारम्भिक काल में, जब कुरैश आप के आमन्त्रण कार्य में रूकावट डाल रहे थे, तो आप हज के समय में लोगों को अपना साथी तथा सहायक बनाने का प्रयत्न करते थे, ताकि *आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* प्रभु का आदेश लोगों तक पहुँचा सकें, जिस पर अंसार ने आगे बढ़कर साथ दिया और आप *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की उन्होंने हिजरत से पूर्व तथा हिजरत के पश्चात सहायता की। इसी प्रकार यहाँ पर आदरणीय ईसा ने सहायता माँगी। यह उस प्रकार की सहायता नहीं थी जो मनुष्य के शक्ति के परे हो, क्योंकि यह शिर्क है। और प्रत्येक नबी शिर्क उन्मूलन (उखाड़ फेंकने) के लिए ही आते रहे हैं, फिर वह स्वयं किस प्रकार शिर्क कर सकते थे ? परन्तु समाधि पूजकों के अन्तकरण की अन्धता पर मातम करने की आवश्यकता है कि वह मृत लोगों से सहायता माँगने का औचित्य दिखाने के लिए आदरणीय ईसा के कथन ﴿مَنْ أَنصَارِي إِلَى اللَّهِ﴾ से तर्क निकालते हैं ? अल्लाह तआला उन्हें मार्ग दर्शन दे।

[4]हवारियों, हवारी का बहुवचन है जिसका अर्थ أنصار (अन्सार) सहायक। जिस प्रकार *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* का कथन है।

हम अल्लाह (तआला) पर ईमान लाये और आप गवाह रहिये कि हम मुसलमान हैं ।

رَبَّنَآ اٰمَنَّا بِمَآ اَنۡزَلۡتَ وَاتَّبَعۡنَا الرَّسُوۡلَ فَاكۡتُبۡنَا مَعَ الشّٰهِدِيۡنَ﴿۵۳﴾

(५३) हे हमारे पालनहार ! हम तेरी उतारी हुई वह्यी (ईशवाणी) पर ईमान लाये और हमने तेरे रसूल का अनुकरण किया । बस अब तू हमें गवाहों में लिख ले ।

وَمَكَرُوۡا وَمَكَرَ اللّٰهُ‌ؕ وَاللّٰهُ خَيۡرُ الۡمٰكِرِيۡنَ﴿۵۴﴾

(५४) और काफ़िरों ने चाल चली और अल्लाह (तआला) ने भी योजना बनायी और अल्लाह (तआला) सभी योजना कारों से श्रेष्ठ है ।[1]

اِذۡ قَالَ اللّٰهُ يٰعِيۡسٰۤى اِنِّىۡ مُتَوَفِّيۡكَ وَرَافِعُكَ اِلَىَّ وَمُطَهِّرُكَ

(५५) जब अल्लाह (तआला) ने फ़रमाया, हे ईसा ! मैं तुझे पूर्णरूप से लेने वाला हूँ ।[2]

«إِنَّ لِكُلِّ نَبِيٍّ حَوَارِيًّا وَحَوَارِيَّ الزُّبَيْرُ». "प्रत्येक नबी का कोई विशेष सहायक होता है और मेरा सहायक ज़ुबैर है ।" (सहीह बुख़ारी)

[1] आदरणीय ईसा के समय में सीरिया का क्षेत्र रूमियों के आधीन था, यहाँ उनके द्वारा जो अधिकारी पदासीन था, वह काफ़िर था । यहूदियों ने आदरणीय ईसा के विरूद्ध उस अधिकारी के कान भरे कि यह संकर نعوذ بالله और विद्रोही हैं आदि आदि । अधिकारी ने उनकी माँग के अनुसार उन्हें फाँसी पर चढ़ाने का निर्णय कर लिया । परन्तु अल्लाह ने आदरणीय ईसा को सुरक्षित आसमान पर उठा लिया और उनके समरूप एक आदमी को उन्होंने फाँसी दे दी और समझते रहे कि हमने ईसा को फाँसी दी है ।

مكر (मक्र) अरबी भाषा में सूक्ष्म तथा गुप्त उपाय को कहते हैं । तथा इसी अर्थ में यहाँ अल्लाह को خير الماكرين कहा गया है, मानो यह उपाय, बुरी भी हो सकता अच्छा भी । यदि बुरे प्रयोजन के लिये हो तो बुरा अच्छे प्रयोजन के लिये हो तो अच्छा है ।

[2] التـوفى यह توفى से बना जिसका धातु وفى इसका मूल अर्थ सम्पूर्णरूप से लेना है । इंसान की मौत पर 'वफ़ात' शब्द इसलिये बोला जाता है, कि उसके शरीरिक अधिकार पूर्णतः छीन लिये जाते हैं । अतः इस शब्दार्थ के विभिन्न रूपों में से मौत मात्र एक रूप है । निंद्रा में भी साम्यिक रूप से मानवी अधिकार निलम्बित कर दिये जाते हैं, इस कारण निंद्रा के लिये भी पवित्र क़ुरआन ने 'वफ़ात' के शब्द का प्रयोग किया है । जिससे विदित हुआ कि कि इसका मूल अर्थ पूर्णरूप से लेना ही हैं । إني متوفيك में यहाँ

مِنَ الَّذِينَ كَفَرُوا وَجَاعِلُ الَّذِينَ اتَّبَعُوكَ فَوْقَ الَّذِينَ كَفَرُوٓا إِلَىٰ يَوْمِ الْقِيَٰمَةِ ۖ ثُمَّ إِلَيَّ مَرْجِعُكُمْ فَأَحْكُمُ بَيْنَكُمْ فِيمَا كُنتُمْ فِيهِ تَخْتَلِفُونَ ﴿٥٥﴾

तथा तुझे अपनी ओर उठाने वाला हूँ और तुझे काफ़िरों से पवित्र करने वाला हूँ।[1] और तुम्हारे अनुयायियों को काफ़िरों से क़यामत के दिन तक ऊपर रखने वाला हूँ।[2] फिर तुम सब का लौटना मेरी ही ओर है, मैं ही तुम्हारे मध्य सभी मतभेदों का निर्णय करूँगा।

فَأَمَّا الَّذِينَ كَفَرُوا فَأُعَذِّبُهُمْ عَذَابًا شَدِيدًا فِي الدُّنْيَا وَالْآخِرَةِ وَمَا لَهُم مِّن نَّٰصِرِينَ ﴿٥٦﴾

(५६) फिर काफ़िरों को तो मैं इस लोक तथा परलोक में कड़ी यातनायें दूँगा। और उनका कोई सहायक न होगा।

وَأَمَّا الَّذِينَ ءَامَنُوا وَعَمِلُوا الصَّٰلِحَٰتِ فَيُوَفِّيهِمْ أُجُورَهُمْ ۗ وَاللَّهُ لَا يُحِبُّ الظَّٰلِمِينَ ﴿٥٧﴾

(५७) परन्तु ईमानवालों और सत्कर्म करने वालों को अल्लाह (तआला) उनका पूरा-पूरा प्रत्युपकार देगा और अल्लाह तआला अत्याचारियों से प्रेम नहीं करता।

ذَٰلِكَ نَتْلُوهُ عَلَيْكَ مِنَ الْءَايَٰتِ وَالذِّكْرِ الْحَكِيمِ ﴿٥٨﴾

(५८) यह जिसे हम तेरे समक्ष पढ़ रहे हैं, आयतें हैं और दृढ़ उपदेश है।

अपने मूल अर्थ में प्रयोग हुआ है। अर्थात हे ईसा मैं तुझे यहूदियों, इसाईयों से बचाकर पूर्णतः अपनी ओर आकाश पर उठा लूँगा। तथा ऐसा ही हुआ। कुछ ने अवस्तिविक अर्थ मृत्यु लिया है जो साधारणतः प्रयोग में आता है किन्तु इस वाक्य में رافعك का पहले तथा متوفيك का अर्थ बाद में लिया हे अर्थात प्रथम तुझे आकाश पर उठा लूँगा तथा पुनः संसार में उतरने पर मौत दूँगा अर्थात यहूदियों के हाथों तुम्हारी हत्या नहीं होगी तुम्हें स्वभाविक मौत ही आयेगी।

[1]इससे तात्पर्य वे आक्षेप से शुद्धता अथवा पवित्रता है, जिनसे आपको यहूदी कलंकित करते थे। *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के द्वारा आपकी सफ़ाई दुनियाँ के समक्ष प्रस्तुत कर दी गयी।

[2]इससे तात्पर्य या तो इसाईयों की सांसारिक विजय यहूदियों पर है जो प्रलय तक रहेगी, यद्यपि कि वह अपने ग़लत विश्वास के कारण अन्तिम मोक्ष प्राप्त करने में असफल ही रहेंगे अथवा मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के अनुयायियों की विजय है।

إِنَّ مَثَلَ عِيسَىٰ عِندَ اللَّهِ كَمَثَلِ آدَمَ ۖ خَلَقَهُ مِن تُرَابٍ ثُمَّ قَالَ لَهُ كُن فَيَكُونُ ﴿٥٩﴾

(५९) अल्लाह (तआला) के निकट ईसा की दशा यथावत आदम के समान है, जिसे मिट्टी से पैदा करके कह दिया कि हो जा बस वह हो गया।

الْحَقُّ مِن رَّبِّكَ فَلَا تَكُن مِّنَ الْمُمْتَرِينَ ﴿٦٠﴾

(६०) तेरे प्रभु की ओर से सत्य यही है, सावधान ! शंका करने वालों में से न होना।

فَمَنْ حَاجَّكَ فِيهِ مِن بَعْدِ مَا جَاءَكَ مِنَ الْعِلْمِ فَقُلْ تَعَالَوْا نَدْعُ أَبْنَاءَنَا وَأَبْنَاءَكُمْ وَنِسَاءَنَا وَنِسَاءَكُمْ وَأَنفُسَنَا وَأَنفُسَكُمْ ثُمَّ نَبْتَهِلْ فَنَجْعَل لَّعْنَتَ اللَّهِ عَلَى الْكَاذِبِينَ ﴿٦١﴾

(६१) इसलिए जो भी आपके पास इस ज्ञान के आ जाने के पश्चात भी आप से इसमें झगड़े, तो आप कह दीजिए कि आओ हम तुम अपने-अपने पुत्रों को और हम-तुम अपनी स्त्रियों को और हम तथा तुम अपने आप को बुला लें फिर हम विलीन होकर प्रार्थना करें। और झूठों पर अल्लाह की फिटकार (धिक्कार) भेजें।[1]

---

[1]यह मोबाहला की आयत कहलाती है, मोबाहला का अर्थ है दो पक्ष का एक-दूसरे पर धिक्कार अर्थात शाप देना, तात्पर्य यह है कि जब दो पक्षों में किसी विषय में विवाद तथा विभेद हो जाये एवं तर्क-वितर्क से उसका अन्त होता न दिखाई दे, तो दोनों अल्लाह से यह प्रार्थना करें कि हममें जो मिथ्यावादी हो उस पर धिक्कार कर। इसकी संक्षिप्त भूमिका यह है कि इसाईयों का एक प्रतिनिधि मंडल *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की सेवा में उपस्थिति हुआ तथा आदरणीय ईसा के संदर्भ में वह जो अत्युक्ति मिश्रित आस्थायें रखते थे उस पर वाद-विवाद करने लगे। अन्ततः यह आयत उतरी तथा आप ने उन्हें मुबाहला पर आमंत्रण दिया। आदरणीय अली व फ़ातिमा तथा हसन एवं हुसैन को भी साथ लिया तथा इसाईयों से कहा कि तुम भी अपने परिवार को बुला लो फिर हम मिलकर झूठे पर धिक्कार की प्रार्थना करें, इसाई परस्पर परामर्श के पश्चात इसके लिए तैयार न हुए तथा यह प्रस्ताव रखा कि आप जो चाहे हम देने को तैयार हैं। आपने उन पर सुरक्षा कर (जिज़या) निर्धारित कर दिया जिसे लेने के लिये आप अबू उबैदा बिन जर्राह को जिन्हें आपने "*अमीने उम्मत*" की उपाधि से अलंकृत किया था उनके साथ भेजा (तफ़सीर इब्ने कसीर तथा फ़तहुल क़दीर आदि से संक्षिप्त) आगामी आयत में अहले किताब (यहूदियों तथा इसाईयों) को एकेश्वरवाद की ओर बुलाये जा रहे हैं।

إِنَّ هَٰذَا لَهُوَ الْقَصَصُ الْحَقُّ ۚ وَمَا مِنْ إِلَٰهٍ إِلَّا اللَّهُ ۚ وَإِنَّ اللَّهَ لَهُوَ الْعَزِيزُ الْحَكِيمُ ﴿٦٢﴾

(६२) नि:संदेह केवल यही सत्य वर्णन है और अल्लाह (तआला) के अतिरिक्त कोई अन्य पूजने योग्य नहीं, और नि:संदेह अल्लाह शक्तिशाली बुद्धिमान है।

فَإِن تَوَلَّوْا فَإِنَّ اللَّهَ عَلِيمٌ بِالْمُفْسِدِينَ ﴿٦٣﴾

(६३) फिर भी यदि वे स्वीकार न करें, तो अल्लाह (तआला) भी भली भाँति विद्रोहियों को जानने वाला है।

قُلْ يَا أَهْلَ الْكِتَابِ تَعَالَوْا إِلَىٰ كَلِمَةٍ سَوَاءٍ بَيْنَنَا وَبَيْنَكُمْ أَلَّا نَعْبُدَ إِلَّا اللَّهَ وَلَا نُشْرِكَ بِهِ شَيْئًا وَلَا يَتَّخِذَ بَعْضُنَا بَعْضًا أَرْبَابًا مِّن دُونِ اللَّهِ ۚ فَإِن تَوَلَّوْا فَقُولُوا اشْهَدُوا بِأَنَّا مُسْلِمُونَ ﴿٦٤﴾

(६४) आप कह दीजिए कि हे अहले किताब! ऐसी न्यायपूर्ण बात की ओर आओ जो हम में तुम में समान है कि हम अल्लाह (तआला) के अतिरिक्त किसी की वंदना (इबादत) न करें और न उसके साथ किसी को सम्मिलित करें।[1] न अल्लाह (तआला) को छोड़कर आपस में एक-दूसरे को स्वामी ही बना लें।[2] यदि वह मुँह मोड़ लें, तो कह दो कि साक्षी रहना कि हम तो मुसलमान हैं।[3]

---

[1]किसी मूर्ति को न किसी क्रास को, न अग्नि को और न किसी अन्य वस्तु को, बल्कि केवल एक अल्लाह की वंदना (इबादत) करें, जैसाकि सभी नबियों ने आमंत्रण दिया।

[2]यह एक तो उस बात की ओर संकेत है कि तुमने आदरणीय मसीह और आदरणीय उज़ैर के अराध्य होने (प्रभु होना) का जो विश्वास गढ़ रखा है यह ग़लत है, वह प्रभु नहीं हैं वे मनुष्य ही हैं दूसरा इस ओर संकेत है कि तुमने अपने विद्वानों धर्मात्मा को उचित-अनुचित करने का अधिकार दे रखा है, यह भी उनको प्रभु बनाना है। जैसाकि आयत اتخذوا أحبارهم इस पर साक्षी है, यह भी उचित नहीं है, हलाल व हराम करने का अधिकार भी केवल अल्लाह ही को है। (इब्ने कसीर व फ़तहुल क़दीर)

[3]सहीह बुख़ारी में है कि क़ुरआन करीम के इस आदेशानुसार आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हिरक़्ल राजाधिराज रोम को पत्र भेजा उसमें इस आयत के हवाले से इस्लाम धर्म स्वीकार करने का आमंत्रण दिया और उसे कहा कि तू मुसलमान हो जायेगा, तो दुगुना पुण्य मिलेगा, वरन तेरी सम्पूर्ण प्रजा का भी पाप तेरे सिर पर होगा।

يَٰٓأَهۡلَ ٱلۡكِتَٰبِ لِمَ تُحَآجُّونَ فِيٓ إِبۡرَٰهِيمَ وَمَآ أُنزِلَتِ ٱلتَّوۡرَىٰةُ وَٱلۡإِنجِيلُ إِلَّا مِنۢ بَعۡدِهِۦٓۚ أَفَلَا تَعۡقِلُونَ ﴿٦٥﴾

(६५) ऐ अहले किताब ! तुम इब्राहीम के विषय में क्यों झगड़ते हो ? जबकि तौरात और इंजील तो उनके पश्चात उतारी गयी, क्या तुम फिर भी नहीं समझते ?[1]

هَٰٓأَنتُمۡ هَٰٓؤُلَآءِ حَٰجَجۡتُمۡ فِيمَا لَكُم بِهِۦ عِلۡمٞ فَلِمَ تُحَآجُّونَ فِيمَا لَيۡسَ لَكُم بِهِۦ عِلۡمٞۚ وَٱللَّهُ يَعۡلَمُ

(६६) सुनो, तुम लोग उसमें झगड़ चुके, जिसका तुम्हें ज्ञान था, अब इसमें क्यों झगड़ते हो, जिसका तुम्हें ज्ञान ही नहीं है ।[2]

«فَأَسْلِمْ تَسْلَمْ، أَسْلِمْ يُؤْتِكَ اللهُ أَجْرَكَ مَرَّتَيْنِ، فَإِنْ تَوَلَّيْتَ، فَإِنَّ عَلَيْكَ إِثْمَ الأَرِيسِيِّينَ».

"इस्लाम स्वीकार कर ले, सुरक्षित रहेगा। इस्लाम ले आ, अल्लाह तआला दुगुना पुण्य देगा, परन्तु यदि तूने इस्लाम धर्म स्वीकार करने से इंकार किया, तो प्रजा का पाप भी तुझ पर होगा। क्योंकि प्रजा के इस्लाम धर्म न स्वीकार करने का कारण भी तू ही बनेगा।" (बुख़ारी, किताब बदउल वह्यी)

इस आयत में तीन बातों का वर्णन है अर्थात १- मात्र अल्लाह की इबादत करना २- उसके साथ किसी का भी मिश्रण न करना ३- और किसी को भी धार्मिक नियमावली वनाने का अल्लाह का अधिकार अथवा स्थान न देना वह समानता के शब्द हैं जिस पर अहले किताब को एकता की आमंत्रण दिया गया है। अतएव इस उम्मत के बिखराव को एकत्रित करने का भी इन तीन बिन्दुओं और इस समानता की बात को सर्वप्रथम आधारशिला बनानी चाहिए।

[1]आदरणीय इब्राहीम के विषय में झगड़े का अर्थ है कि यहूदी और इसाई दोनों यह दावा करते थे कि आदरणीय इब्राहीम उनके धर्म के मानने वाले थे, यद्यपि तौरात जिस पर यहूदी विश्वास करते हैं और इंजील जिसे इसाई पवित्र पुस्तक मानते हैं, दोनों आदरणीय इब्राहीम के सैकड़ों वर्ष बाद उतरी, फिर आदरणीय इब्राहीम यहूदी अथवा इसाई किस प्रकार हो सकते थे ? कहते हैं कि आदरणीय इब्राहीम और आदरणीय मूसा के मध्य एक हजार वर्ष की अवधि का अन्तर है और आदरणीय मूसा तथा आदरणीय ईसा के मध्य दो हजार वर्ष का अन्तर था। (कुर्तबी)

[2]तुम्हारे ज्ञान व धर्म की तो यह दशा है कि जिन बातों का तुम्हें ज्ञान है अर्थात अपने धर्म तथा अपनी किताब का इसके विषय में तुम्हारे झगड़े (जिसका वर्णन पिछली आयत में आ चुका है) सत्यता पर नहीं हैं तथा अज्ञानता के द्योतक भी। तो फिर तुम उस बात पर क्यों झगड़ते हो जिसका तुम्हें तनिक भी ज्ञान नहीं है ? अर्थात आदरणीय इब्राहीम

وَأَنْتُمْ لَا تَعْلَمُونَ ﴿٦٦﴾

और अल्लाह (तआला) जानता है, तुम नहीं जानते।

مَا كَانَ إِبْرَاهِيمُ يَهُودِيًّا وَلَا نَصْرَانِيًّا وَلَٰكِنْ كَانَ حَنِيفًا مُسْلِمًا وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِينَ ﴿٦٧﴾

(६७) इब्राहीम न तो यहूदी थे न इसाई, बल्कि वह शुद्ध रूप से मात्र मुसलमान थे।[1] वह मूर्तिपूजक (मिश्रणवादी) भी न थे।

إِنَّ أَوْلَى النَّاسِ بِإِبْرَاهِيمَ لَلَّذِينَ اتَّبَعُوهُ وَهَٰذَا النَّبِيُّ وَالَّذِينَ آمَنُوا وَاللَّهُ وَلِيُّ الْمُؤْمِنِينَ ﴿٦٨﴾

(६८) सब लोगों से अधिक इब्राहीम के निकटतम वह लोग हैं, जिन्होंने उनका कहना माना और यह नबी, और जो लोग ईमान लाये।[2] ईमान वालों का संरक्षक तथा सहायक अल्लाह है।

की श्रेष्ठता एवं विशेषता तथा उनके मिल्लत हनीफ़ा (सीधे राह पर चलने वाली क़ौम), जिसका आधार एकेश्वरवाद तथा मात्र एक अल्लाह की इबादत पर है।

[1] حنيفا مسلما (शुद्ध रूप मात्र मुसलमान) अर्थात मिश्रण से नफ़रत करने वाला और मात्र एक अल्लाह की उपासना करने वाला।

[2] तात्पर्य नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम और सच्चे मुसलमान हैं क्योंकि इस्लाम धर्म के नियम मिल्लत हनीफ़ा से सबसे निकटतम है, इसीलिये क़ुरआन करीम में *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* को मिल्लते इब्राहीम के पालन करने का आदेश दिया गया है। ﴿أَنِ اتَّبِعْ مِلَّةَ إِبْرَاهِيمَ حَنِيفًا﴾ (*अन-नह्ल-१२३*) इसके अतिरिक्त हदीस में है।*रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने फ़रमाया :

«إِنَّ لِكُلِّ نَبِيٍّ وُلَاةً مِنَ النَّبِيِّينَ، وَإِنَّ وَلِيِّي مِنْهُمْ أَبِي وَخَلِيلُ رَبِّي عَزَّ وَجَلَّ».

"(प्रत्येक नबी के नबियों में से कुछ मित्र होते हैं, मेरे मित्र उनमें से मेरे पिता और मेरे प्रभु के मित्र (इब्राहीम) हैं फिर आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने यही आयत पढ़ी"। (त्रिमिज़ी) उदधृत इब्ने कसीर)

وَدَّتْ طَآئِفَةٌ مِّنْ أَهْلِ الْكِتَٰبِ لَوْ يُضِلُّونَكُمْ وَمَا يُضِلُّونَ إِلَّآ أَنفُسَهُمْ وَمَا يَشْعُرُونَ ﴿٦٩﴾

(६९) अहले किताब का एक गुट चाहता है कि तुम्हें भटका दे, वास्तव में वे स्वयं अपने आपको भटका रहे हैं और समझते नहीं ।[1]

يَٰٓأَهْلَ الْكِتَٰبِ لِمَ تَكْفُرُونَ بِـَٔايَٰتِ اللَّهِ وَأَنتُمْ تَشْهَدُونَ ﴿٧٠﴾

(७०) ऐ अहले किताब ! तुम स्वयं साक्षी होने के उपरान्त भी अल्लाह की आयतों को क्यों नहीं मानते ।[2]

يَٰٓأَهْلَ الْكِتَٰبِ لِمَ تَلْبِسُونَ الْحَقَّ بِالْبَٰطِلِ وَتَكْتُمُونَ الْحَقَّ وَأَنتُمْ تَعْلَمُونَ ﴿٧١﴾

(७१) ऐ अहले किताब ! जानने के उपरान्त भी सच और झूठ को क्यों मिला रहे हो ? और सच्चाई को क्यों छिपा रहे हो ?[3]

---

[1]यह यहूदियों के द्वेष और ईर्ष्या का स्पष्टीकरण है, जो वह ईमानवालों से रखते थे और इसी द्वेष के कारण मुसलमानों को भटकाने का प्रयत्न करते थे । अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि इस प्रकार वह स्वयं ही अनजाने में अपने आपको भटका रहे हैं ।

[2]साक्षी हीन का अर्थ है कि तुम्हें *नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की सत्यता एवं वास्तविकता का ज्ञान है ।

[3]इसमें यहूदियों के दो बड़े अपराधों की ओर संकेत करके उनको छोड़ देने को कहा जा रहा है । प्रथम अपराध यह कि सच और झूठ को मिलाना, जिससे लोग सच और झूठ के वीच अंतर न जान सकें अर्थात सत्य को छिपाना । अर्थात *नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के जो गुण और विशेषताएं तौरात में लिखे हुए थे, उन्हें लोगों से छिपाना, ताकि आप *सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की सच्चाई कम से कम इस रूप में स्पष्ट न हो सके । और यह दोनों अपराध जान बूझकर करते थे जिससे उनको समझ पाना असम्भव हो गया था । उनके अपराधों की ओर *सूर: अल-बक़र:* में भी संकेत किया गया ।

﴿ وَلَا تَلْبِسُوا الْحَقَّ بِالْبَٰطِلِ وَتَكْتُمُوا الْحَقَّ وَأَنتُمْ تَعْلَمُونَ ﴾ [البقرة: ٤٢]

"सच को झूठ के साथ मत मिलाओ और सच मत छिपाओ और तुम जानते हो ।"

अहले किताव के शब्द को कुछ व्याख्याकारों ने सामान्य रखा है, जिसमें यहूदी और इसाई दोनों सम्मिलित हैं । अर्थात दोनों को इन अपराधों से रूक जाने के लिए सावधान किया गया है । और कुछ के निकट इससे तात्पर्य केवल वह यहूदी क़बीले जो मदीने में निवास करते थे, बनू कुरैज़ा, बनू नदीर, तथा बनू कैनुकाअ । अधिक उचित बात यही लगती है

وَقَالَت طَّآئِفَةٌ مِّنْ أَهْلِ الْكِتَٰبِ ءَامِنُوا بِالَّذِىٓ أُنزِلَ عَلَى الَّذِينَ ءَامَنُوا وَجْهَ النَّهَارِ وَاكْفُرُوٓا ءَاخِرَهُۥ لَعَلَّهُمْ يَرْجِعُونَ ﴿٧٢﴾

(७२) और अहले किताब के एक गुट ने कहा कि जो कुछ भी ईमानवालों पर उतारा गया है। उस पर दिन चढ़े तो ईमान लाओ और और संध्या के समय इंकार कर दो ताकि यह लोग भी पलट जायें।[1]

وَلَا تُؤْمِنُوٓا إِلَّا لِمَن تَبِعَ دِينَكُمْ قُلْ إِنَّ الْهُدَىٰ هُدَى اللَّهِ أَن يُؤْتَىٰٓ أَحَدٌ مِّثْلَ مَآ أُوتِيتُمْ أَوْ يُحَآجُّوكُمْ عِندَ رَبِّكُمْ قُلْ إِنَّ الْفَضْلَ بِيَدِ اللَّهِ يُؤْتِيهِ مَن يَشَآءُ وَاللَّهُ وَٰسِعٌ عَلِيمٌ ﴿٧٣﴾

(७३) और सिवाय तुम्हारे धर्म पर चलने वालों के और किसी पर विश्वास न करो।[2] आप कह दीजिए ! नि:संदेह मार्गदर्शन तो अल्लाह ही का मार्ग दर्शन है।[3] (और यह भी कहते हैं कि इस बात पर भी विश्वास न करो) कि कोई उस जैसा दिया जाये जैसा तुम दिये गये हो।[4] अथवा यह कि यह तुम से

क्योंकि मुसलमानों का सीधा सम्बन्ध उन्हीं से था और यही *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के विरोध में बढ़-चढ़कर भाग लेते थे।

[1]यह यहूदियों की एक और चाल का वर्णन है। जिससे वह मुसलमानों को भटकाना चाहते थे कि उन्होंने आपस में यह विचार किया कि प्रात: मुसलमान हो जायें और संध्या के समय इंकार कर दें ताकि मुसलमानों को भी अपने इस्लाम के विषय में शंका उत्पन्न हो कि यह लोग इस्लाम स्वीकार करने के उपरान्त अपने धर्म में पुन: लौट गये हैं, तो सम्भव है कि इस्लाम में ऐसे अवगुण और त्रुटियाँ हों, जो उनके ज्ञान में आयीं हों।

[2]यह आपस में निर्णय लिया कि दिखावे के लिए मुसलमान हो जाओ, परन्तु अपने धर्म (यहूदी) के अतिरिक्त किसी बात पर विश्वास न करना।

[3]यह स्वयं एक वाक्य है जिसका न तो प्रारम्भ से और न बाद के वाक्यों से कोई सम्बन्ध है। केवल उनकी चालों की असली बात इससे स्पष्ट करना था, कि उनकी चालों से कुछ न होगा क्योंकि मार्गदर्शन देना तो अल्लाह के हाथ में है। वह जिसको मार्गदर्शन प्रदान कर दे अथवा देना चाहे, तो तुम्हारी चालें उसमें रूकावट नहीं बन सकतीं।

[4]यह भी यहूदियों का कथन है इसका पक्ष ولا تؤمنوا पर है। अर्थात यह भी स्वीकार मत करो जिस प्रकार तुम्हारे यहाँ नबूअत आदि रही है, यह किसी और को भी मिल सकती है और इस प्रकार यहूदियत के अतिरिक्त कोई अन्य धर्म भी सत्य हो सकता है।

तुम्हारे प्रभु के पास झगड़ा करेंगे, आप कह दीजिए कि कृपा तो अल्लाह (तआला) के हाथ में है। वह जिसे चाहे उसे प्रदान करे, अल्लाह (तआला) महान और सर्वज्ञ है।

يَّخْتَصُّ بِرَحْمَتِهٖ مَنْ يَّشَآءُ ۭ وَاللّٰهُ ذُو الْفَضْلِ الْعَظِيْمِ ۝

(७४) वह अपनी कृपा से जिसे चाहे विशेष कर ले, और अल्लाह (तआला) परम कृपालु है।[1]

وَمِنْ اَھْلِ الْكِتٰبِ مَنْ اِنْ تَاْمَنْهُ بِقِنْطَارٍ يُّؤَدِّهٖٓ اِلَيْكَ ۚ وَمِنْھُمْ مَّنْ اِنْ تَاْمَنْهُ بِدِيْنَارٍ لَّا يُؤَدِّهٖٓ اِلَيْكَ اِلَّا مَا دُمْتَ عَلَيْهِ قَاۗىِٕمًا ۭ

(७५) और कुछ अहले किताब ऐसे भी हैं कि तू कोष का न्यासधारी उन्हें बना दे, तो भी तुझे वापस कर दें, और उनमें कुछ ऐसे भी हैं कि यदि तू उन्हें एक दीनार भी अमानत

---

[1]इस आयत के दो अर्थ वर्णित किये जाते हैं। एक यह कि यहूदियों के बड़े-बड़े आलिम (विद्वान) अपने शिष्यों से कहते कि दिन चढ़ते ईमान लाओ और दिन उतरते काफ़िर हो जाओ, ताकि इस समय जो मुसलमान भी हैं, वह भ्रम में पड़ जायें और मुर्तदद हो जायें। अपने-अपने शिष्यों को यह भी शिक्षा देते कि केवल दिखावे के लिए मुसलमान होना। सचमुच मुसलमान न हो जाना, बल्कि यहूदी ही रहना। और यह न समझ बैठना कि जैसा धर्म जैसी ईशवाणी (वह्यी), धार्मिक नियम और जैसा ज्ञान और कृपा तुम्हें दिया गया है, वैसी किसी और को भी दी जा सकती है। अथवा तुम्हारे अतिरिक्त कोई अन्य भी सत्यता पर है, जो तुम्हारे विरूद्ध अल्लाह के समक्ष तर्क प्रस्तुत कर सकता है। और तुम्हें ग़लत ठहरा सकता है। इस अर्थ के आधार पर अल्लाह तआला की विशेषताओं के वर्णन वाले वाक्य को छोड़कर अन्य पूरा का पूरा वाक्य यहूदियों का कथन है। दूसरा अर्थ है कि ऐ यहूदियो ! तुम सच्चाई को दबाने की यह जो चालें तथा योजनायें इसलिए बना रहे हो कि तुम्हें दुःख तथा ईर्ष्या है कि जैसा ज्ञान, कृपा, ईशवाणी (वह्यी) धार्मिक नियम तथा धर्म तुम्हें दिया गया था। अब वैसा ही ज्ञान, कृपा और धर्म किसी अन्य को क्यों प्रदान किया गया ? दूसरे तुम्हें यह शंका तथा भय है कि यदि सत्य का यह आमंत्रण बढ़ गया और उन्होंने अपनी जड़ें सुदृढ़ कर लीं, तो न केवल दुनियाँ में जो मान-सम्मान तुमको प्राप्त है, वह चला जायेगा। बल्कि तुमने जो सच्चाई छिपा रखी है, उसका पर्दा फ़ाश हो जायेगा। और इस आधार पर यह लोग अल्लाह के निकट भी तुम्हारे विरूद्ध तर्क स्थापित कर देंगे परन्तु तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि धार्मिक नियम अल्लाह की कृपा है। और यह किसी का उत्तराधिकार नहीं। बल्कि वह अपनी कृपा जिसे चाहता है प्रदान करता है। और उसे मालूम है कि यह कृपा किसको प्रदान करनी है।

ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ قَالُوْا لَيْسَ عَلَيْنَا فِى الْاُمِّيّٖنَ سَبِيْلٌ ۚ وَيَقُوْلُوْنَ عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ وَهُمْ يَعْلَمُوْنَ ﴿٧٥﴾

के रूप में दे तो तुझे अदा न करें। हाँ यह और बात है कि तू उनके सिर पर ही खड़ा रहे, यह इसलिए कि उन्होंने कह रखा है कि हम पर इन अशिक्षितों के अधिकार का कोई पाप नहीं, यह लोग जानने के उपरान्त भी अल्लाह पर झूठ बोलते हैं।[1]

بَلٰى مَنْ اَوْفٰى بِعَهْدِهٖ وَاتَّقٰى فَاِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُتَّقِيْنَ ﴿٧٦﴾

(७६) क्यों नहीं (पकड़ होगी) परन्तु जो व्यक्ति अपना वचन पूरा करे और अल्लाह तआला से डरे, तो अल्लाह तआला भी ऐसे डरने वालों को अपना मित्र रखता है।[2]

اِنَّ الَّذِيْنَ يَشْتَرُوْنَ بِعَهْدِ اللّٰهِ وَاَيْمَانِهِمْ ثَمَنًا قَلِيْلًا اُولٰٓئِكَ لَا خَلَاقَ لَهُمْ فِى الْاٰخِرَةِ وَلَا

(७७) निःसंदेह जो अल्लाह (तआला) के वचन और अपनी शपथों को थोड़े से मूल्य पर बेच डालते हैं, उनके लिए आख़िरत में

---

[1] اميين (अशिक्षित अनपढ़) से तात्पर्य अरब के मूर्तिपूजक हैं। यहूदियों के अपभोगी लोग यह दावा करते थे कि चूँकि यह मूर्तिपूजक हैं इसलिए इनका माल हड़प कर जाना उचित है। इसमें कोई पाप नहीं है। अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि यह लोग अल्लाह पर झूठ बोलते हैं। अल्लाह तआला किस प्रकार से दूसरों का माल हड़प कर जाने की आज्ञा प्रदान कर सकता है? और कुछ व्याख्याओं में वर्णन है कि *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* ने भी यह सुन कर कहा "अल्लाह के शत्रुओं ने झूठ कहा, अज्ञानता काल की सभी चीज़ें मैं अपने पैरों तले कुचलता हूँ, सिवाय अमानत के कि वह प्रत्येक परिस्थिति में लौटानी है, चाहे वह किसी सत्कर्मी की हो अथवा कुकर्मी की हो।" (इब्ने कसीर तथा फ़तहुल क़दीर) अफ़सोस है कि यहूदियों की तरह आज कुछ मुसलमान भी मूर्तिपूजकों का माल हड़पने की बात कहते हैं कि युद्धस्थली का ब्याज उचित है, और लड़ाकू के माल का कोई आदर नहीं।

[2] "वचन पूरा करे।" का अर्थ है वह वचन पूरा करे, जो अहले किताब से अथवा प्रत्येक नबी के वास्ते से उनकी उम्मतों से *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* पर ईमान लाने के विषय में लिया गया है। "और अल्लाह से डरे" अल्लाह तआला द्वारा रोके गये कर्मों से रूके और उन बातों के अनुसार कर्म करें जो *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* वर्णित करें। ऐसे लोग निःसंदेह अल्लाह की पकड़ से बचे रहेंगे, बल्कि अल्लाह के प्यारे होंगे।

يُكَلِّمُهُمُ اللهُ وَلَا يَنْظُرُ إِلَيْهِمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ وَلَا يُزَكِّيْهِمْ وَلَهُمْ عَذَابٌ أَلِيْمٌ ۝٧٧

कोई भाग नहीं है। अल्लाह (तआला) न तो उनसे बातचीत करेगा, और न क़ियामत के दिन उनकी ओर देखेगा, न उन्हें पवित्र करेगा, और उनके लिए दुखद यातनायें हैं।[1]

وَإِنَّ مِنْهُمْ لَفَرِيْقًا يَّلْوٗنَ أَلْسِنَتَهُمْ بِالْكِتٰبِ لِتَحْسَبُوْهُ مِنَ الْكِتٰبِ وَمَا هُوَ مِنَ الْكِتٰبِ ۚ وَيَقُوْلُوْنَ هُوَ مِنْ عِنْدِ اللهِ وَمَا هُوَ مِنْ عِنْدِ اللهِ ۚ وَيَقُوْلُوْنَ عَلَى اللهِ الْكَذِبَ وَهُمْ يَعْلَمُوْنَ ۝٧٨

(७८) अवश्य उनमें ऐसा गिरोह भी है जो किताब पढ़ते हुए अपनी जीभ मरोड़ लेता है, ताकि तुम उसे किताब ही का लेख समझो, हालाँकि वास्तव में वह किताब में से नहीं और यह कहते भी है कि वह अल्लाह (तआला) की ओर से हैं, हालाँकि वास्तव में वह अल्लाह तआला की ओर से नहीं वह तो जान बूझ कर अल्लाह (तआला) पर झूठ बोलते हैं।[2]

---

[1]उपरोक्त वर्णित लोगों के विपरीत दूसरे लोगों का वर्णन किया गया और यह दो प्रकार के लोग हैं जिनमें से एक तो वह लोग हैं जो अल्लाह तआला से किये गये वचन तथा शपथ को पीछे छोड़कर थोड़े से आर्थिक लाभ के लिए *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* पर ईमान नहीं लाते। दूसरे वह लोग हैं जो झूठी शपथ ग्राहण करके अपना माल बेचते अथवा दूसरे का माल हड़प कर जाते हैं। जैसाकि हदीस में आप ने फ़रमाया :

"जो व्यक्ति किसी का माल हड़पने के लिये झूठी कसमें खाये, वह अल्लाह से इस दशा में मिलेगा कि अल्लाह उस पर बहुत क्रोधित होगा।" (सहीह बुख़ारी व मुस्लिम आदि) और यह भी फ़रमाया : "तीन आदमियों से अल्लाह तआला न बात करेगा, न उनकी ओर देखेगा और न पवित्र करेगा और उनके लिये दुखद यातना होगी, उनमें से एक वह व्यक्ति है, जो झूठी शपथ के द्वारा अपना माल बेचता है।" (सहीह मुस्लिम) बहुत-सी हदीसों में इन बातों का वर्णन है। (इब्ने कसीर व फ़तहुल क़दीर)

[2]यह उन यहूदियों का वर्णन है जिन्होंने अल्लाह की किताब (तौरात) में न केवल परिवर्तन किया वरन दो अपराध और किये, एक तो जीभ को मरोड़कर किताब के शब्दों को पढ़ते, जिससे जनता को कथानक के विपरीत प्रभाव देने में वह सफल हो जाते। दूसरे अपनी मन-गढ़न्त बातों को अल्लाह की बातें कहते। दुर्भाग्य से मुसलमानों के धार्मिक अगुआओं में भी, *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* की भविष्यवाणी «لَتَتَّبِعُنَّ سُنَنَ مَنْ كَانَ قَبْلَكُمْ». (तुम अपने से पहली उम्मतों के पग-पग अनुसरण करोगे) के अनुसार ऐसे बहुत से लोग हैं जो भौतिक स्वार्थ अथवा गिरोही संकीर्णता अथवा वैचारिक अवरोध के कारण से क़ुरआन करीम के

(७९) किसी ऐसे पुरूष को अल्लाह (तआला) किताब विज्ञान और नबूअत प्रदान करे, यह उचित नहीं कि फिर भी लोगों से कहे कि अल्लाह (तआला) को छोड़कर मेरे भक्त बन जाओ बल्कि वह तो कहेगा कि तुम सब लोग प्रभु के हो जाओ ।[1] तुम्हें किताब सिखाने और तुमको पढ़ाने के कारण ।[2]

مَا كَانَ لِبَشَرٍ اَنْ يُّؤْتِيَهُ اللّٰهُ الْكِتٰبَ وَالْحُكْمَ وَالنُّبُوَّةَ ثُمَّ يَقُوْلَ لِلنَّاسِ كُوْنُوْا عِبَادًا لِّيْ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَلٰكِنْ كُوْنُوْا رَبّٰنِيّٖنَ بِمَا كُنْتُمْ تُعَلِّمُوْنَ الْكِتٰبَ وَبِمَا كُنْتُمْ تَدْرُسُوْنَ ۝

(८०) और वह तुम्हें यह आज्ञा नहीं देगा कि फ़रिश्तों (स्वर्गदूतों) तथा नबियों (ईशदूतों) को अराध्य बना लो । क्या आज्ञाकारी होने

وَلَا يَاْمُرَكُمْ اَنْ تَتَّخِذُوا الْمَلٰٓئِكَةَ وَالنَّبِيّٖنَ اَرْبَابًا ؕ اَيَاْمُرُكُمْ بِالْكُفْرِ

साथ भी यही व्यवहार करते हैं । पढ़ते क़ुरआन की आयत हैं और विषय स्वयं गढ़ते हैं । जनता समझती है कि मोलवी साहब ने समस्या का हल क़ुरआन से निकाला है । वास्तव में इस हल का क़ुरआन से कोई सम्बन्ध नहीं होता अथवा आयत के अर्थों में बदलाव अथवा बनावट से काम लिया जाता है ताकि सिद्ध किया जा सके कि यह अल्लाह की ओर से है ।

[1]यह इसाईयों के विषय में कहा जा रहा है कि उन्होंने आदरणीय ईसा को पूज्य बना दिया है यद्यपि वह एक मनुष्य थे जिन्हें किताब, प्रबोध और नुबूअत से सुशोभित किया गया था । और ऐसा कोई व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता कि अल्लाह को छोड़कर मेरे पुजारी और भक्त बन जाओ, बल्कि वह यह कहता है कि प्रभु वाले बन जाओ । رباني अल्लाह से सम्बन्धित है नून और अलिफ़ की अधिकता अतिश्योक्ति के लिए है ।

[2]अर्थात अल्लाह की किताब की शिक्षा-दीक्षा के परिणाम स्वरूप प्रभु की पहचान और प्रभु से विशेष सम्बन्ध स्थापित होना चाहिए । इसी प्रकार अल्लाह की किताब का ज्ञान रखने वाले को यह आवश्यक है कि लोगों को भी क़ुरआन की शिक्षा दे । इस आयत से यह स्पष्ट है कि जब अल्लाह के पैग़म्बरों को यह अधिकार नहीं है कि वह लोगों को अपनी वंदना (इबादत) करने का आदेश दें, तो यह अधिकार किसी अन्य को किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ?

بَعْدَ إِذْ أَنتُم مُّسْلِمُونَ ﴿٨٠﴾

के बाद तुम्हें अवज्ञाकारी बन जाने का आदेश देगा ।[1]

وَإِذْ أَخَذَ اللَّهُ مِيثَاقَ النَّبِيِّينَ لَمَا آتَيْتُكُم مِّن كِتَابٍ وَحِكْمَةٍ ثُمَّ جَاءَكُمْ رَسُولٌ مُّصَدِّقٌ لِّمَا مَعَكُمْ لَتُؤْمِنُنَّ بِهِ وَلَتَنصُرُنَّهُ ۚ قَالَ أَأَقْرَرْتُمْ وَأَخَذْتُمْ عَلَىٰ ذَٰلِكُمْ إِصْرِي ۖ قَالُوا أَقْرَرْنَا ۚ

(८१) और जब अल्लाह (तआला) ने नबियों से वचन लिया कि जो कुछ मैं तुम्हें किताब तथा विज्ञान प्रदान करूँ, फिर तुम्हारे पास वह रसूल आये जो तुम्हारे पास की वस्तु को सच बताये तो तुम्हारे लिए उस पर ईमान लाना तथा उसकी सहायता करना आवश्यक है ।[2] फ़रमाया कि तुम क्या इसको स्वीकार

---

[1]अर्थात नबियों, फ़रिश्तों (अथवा किसी अन्य को) प्रभु की विशेषताओं से युक्त समझना अधर्म है। तुम्हारे मुसलमान हो जाने के पश्चात एक नबी भला इस प्रकार का काम कैसे कर सकता है ? क्योंकि उनका कार्य तो ईमान का आमंत्रण देना है जो एक अल्लाह जिसका कोई साझी नहीं की वंदना (इबादत) ही का नाम है। कुछ व्याख्याकारों ने इस आयत के उतरने का कारण बताया है कि कुछ मुसलमानों ने *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* से यह आज्ञा प्राप्त करनी चाही की सम्मान स्वरूप वह उनको दण्डवत (सजदा) करें । जिस पर यह आयत उतरी। (फ़तहुल क़दीर) और कुछ ने इसके उतरने का कारण यह बताया है कि यहूदियों और इसाईयों ने मिलकर *नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* से कहा क्या आप यह चाहते हैं कि हम आपकी उस प्रकार अराधना करें जिस प्रकार इसाई आदरणीय ईसा की करते हैं ? आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया : "अल्लाह हमारी रक्षा करे इस बात से कि हम अल्लाह को छोड़कर किसी अन्य की वंदना करें अथवा किसी को इसका आदेश दें। अल्लाह ने न मुझे इसलिए भेजा है और न इसका आदेश ही दिया है।" इस पर यह आयत उतरी। (इब्ने कसीर उदघृत सीरत इब्ने हिशाम)

[2]अर्थात प्रत्येक नबी से यह वचन लिया गया कि यदि उसके समय में कोई अन्य नबी आया, तो उस पर ईमान लाना तथा उसकी सहायता करना आवश्यक है। जब नबी की उपस्थिति में आने वाले नये नबी पर स्वयं उस नबी को ईमान लाना आवश्यक है, तो उसके अनुयायियों को तो इस नये नबी पर इस आदेशानुसार ईमान लाना अति आवश्यक है, कुछ व्याख्याकारों ने ﴿رَسُولٌ مُّصَدِّقٌ﴾ से الرسول का भावार्थ लिया है अर्थात आदरणीय मोहम्मद रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के विषय में सभी नबियों से वचन लिया गया कि यदि उनके समय में वह आ जायें, तो अपना दूतत्व (नबूअत) समाप्त करके उन पर ईमान लाना होगा । परन्तु वास्तविकता यह है कि पहले अर्थ में यह भावार्थ स्वयं आ जाता है। इसलिये क़ुरआन के शब्दों के अनुसार पहला अर्थ ही अधिक उचित है और इस भावार्थ से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नबूअत मोहम्मदी

قَالَ فَاشْهَدُوْا وَاَنَا مَعَكُمْ مِّنَ الشّٰهِدِيْنَ ﴿٨١﴾

करते हो और उस पर मेरा संकल्प ले रहे हो सब ने कहा हमें स्वीकार है, फ़रमाया तो गवाह रहो और मैं स्वयं भी तुम्हारे साथ साक्षी हूँ।

فَمَنْ تَوَلّٰى بَعْدَ ذٰلِكَ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْفٰسِقُوْنَ ﴿٨٢﴾

(८२) अब इसके बाद भी जो पलट जायें, वह अवश्य अवज्ञाकारी हैं।[1]

اَفَغَيْرَ دِيْنِ اللّٰهِ يَبْغُوْنَ وَلَهٗٓ

(८३) क्या वह अल्लाह (तआला) के धर्म के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म की खोज में हैं ?

(सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के जवलंत सूर्य के उपरान्त किसी भी नबी का दिया नहीं जल सकता। जैसाकि हदीस में आता है कि एक बार आदरणीय उमर तौरात का एक पन्ना पढ़ रहे थे, तो नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम यह देखकर बहुत क्रोधित हुए और फ़रमाया :

"والذي نفسي بيده لو أصبح فيكم موسى عليه السلام ثم اتبعتموه و تركتموني لضللتم"

"क़सम है उस शक्ति की जिसके हाथ में मोहम्मद का प्राण है कि यदि मूसा *अलैहिस्सलाम* भी जीवित होकर आ जायें और तुम मुझे छोड़कर उनके अनुयायी वन जाओ तो अवश्य भटक जाओगे।" (मुसनद अहमद उदघृत इव्ने कसीर)

कुछ भी हो अव प्रलय (क़ियामत) तक अनुसरणीय केवल *मोहम्मद रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* हैं और मोक्ष उन्हीं के अनुसरण में निर्धारित है। न किसी इमाम का अनुयायी अथवा किसी महात्मा के वचन में। जब अब किसी पैग़म्बर का सिक्का नहीं चल सकता तो किसी अन्य का अनुकरण किस प्रकार हो सकता है ?

[1]यह अहले किताब (यहूदी और ईसाई) तथा अन्य धर्मावलम्बियों को चेतावनी है कि *मोहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम* के आ जाने के बाद भी उन पर ईमान लाने के वजाये अपने-अपने धर्म का पालन करना इस वचन के विरूद्ध है। जो अल्लाह तआला ने प्रत्येक नबी के द्वारा प्रत्येक उम्मत (समुदायों) से लिया है और इस वचन को तोड़ देना अधर्म है। फ़िसक यहाँ कुफ़्र के अर्थ में है क्योंकि नबूअते मोहम्मदी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से इंकार केवल फ़िसक नही कुफ़्र है।

أَسْلَمَ مَنْ فِي السَّمٰوٰتِ وَالْأَرْضِ طَوْعًا وَّكَرْهًا وَّإِلَيْهِ يُرْجَعُوْنَ ﴿٨٣﴾

जब कि सभी आसमानों वाले और धरती वाले अल्लाह (तआला) के अवज्ञाकारी हैं। स्वेच्छा से हों तो और दबाव से हों तो[1] सभी को उसकी ओर लौटाया जायेगा।

قُلْ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَمَآ اُنْزِلَ عَلَيْنَا وَمَآ اُنْزِلَ عَلٰٓى اِبْرٰهِيْمَ وَاِسْمٰعِيْلَ وَاِسْحٰقَ وَيَعْقُوْبَ وَالْاَسْبَاطِ وَمَآ اُوْتِيَ مُوْسٰى وَعِيْسٰى وَالنَّبِيُّوْنَ مِنْ رَّبِّهِمْ ۖ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْهُمْ ۖ وَنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ﴿٨٤﴾

(८४) आप कह दीजिए कि हम अल्लाह (तआला) पर और जो कुछ हम पर उतारा गया है और जो इब्राहीम (*अलैहिस्सलाम*) और इस्माईल (*अलैहिस्सलाम*) और याक़ूब (*अलैहिस्सलाम*) और उनकी संतान पर उतारा गया, और जो कुछ मूसा (*अलैहिस्सलाम*) और ईसा (*अलैहिस्सलाम*) और दूसरे नबियों को अल्लाह (तआला) की ओर से प्रदान किये गये उन सब पर ईमान लाये।[2] हम उनमें से किसी के मध्य अन्तर नहीं करते और हम अल्लाह (तआला) के आज्ञाकारी हैं।

---

[1]जब आकाश और धरती की कोई वस्तु अल्लाह तआला के सामर्थ्य तथा शक्ति से बाहर नहीं है, चाहे प्रसन्नता से अथवा अप्रसन्नता से, तो तुम उसके समक्ष सिर झुकाने (अर्थात इस्लाम स्वीकारने से) कहाँ भाग रहे हो ? अगली आयत में ईमान लाने की विधि बताकर फिर कहा जा रहा है कि प्रत्येक नबी को प्रत्येक आसमान से उतरी किताब पर बिना किसी विभेद के ईमान लाना आवश्यक है। पुन: कहा जा रहा है कि इस्लाम धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म स्वीकृत नहीं होगा। किसी अन्य धर्म के अनुयायियों के भाग्य में केवल हानि के और कुछ न होगा।

[2]अर्थात सभी नबियों पर ईमान लाना कि वह अपने-अपने समय में अल्लाह की ओर से भेजे गये थे। तथा उन पर जो किताबें और सूचनात्मक पृष्ठ जो धार्मिक नियमों के लिए उतारे गये, उनके विषय में यह विश्वास रखना कि वह आसमानी किताबें थीं, जो वास्तव में अल्लाह की ओर से उतारी हुई थीं आवश्यक है परन्तु अब पालन केवल क़ुरआन के आदेशानुसार होगा। क्योंकि क़ुरआन ने पिछली किताबों को निरस्त कर दिया है।

وَمَن يَبْتَغِ غَيْرَ الْإِسْلَامِ دِينًا فَلَن يُقْبَلَ مِنْهُ وَهُوَ فِي الْآخِرَةِ مِنَ الْخَاسِرِينَ ﴿٨٥﴾

(८५) और जो व्यक्ति इस्लाम के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म की खोज करे उसका धर्म मान्य नहीं होगा और वह परलोक (आख़िरत) में क्षति ग्रस्ताओं में होगा।

كَيْفَ يَهْدِي اللَّهُ قَوْمًا كَفَرُوا بَعْدَ إِيمَانِهِمْ وَشَهِدُوا أَنَّ الرَّسُولَ حَقٌّ وَجَاءَهُمُ الْبَيِّنَاتُ ۚ وَاللَّهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الظَّالِمِينَ ﴿٨٦﴾

(८६) अल्लाह (तआला) किस प्रकार से उन लोगों को मार्गदर्शन देगा, जो अपने ईमान लाने, रसूल की सत्यता जानने की गवाही देने और अपने पास स्पष्ट तर्क आ जाने के बाद भी अधर्मी हो जायें। अल्लाह (तआला) ऐसे अत्याचारियों को सीधी राह नहीं दिखाता।

أُولَٰئِكَ جَزَاؤُهُمْ أَنَّ عَلَيْهِمْ لَعْنَةَ اللَّهِ وَالْمَلَائِكَةِ وَالنَّاسِ أَجْمَعِينَ ﴿٨٧﴾

(८७) उनका दण्ड यह है कि उन पर अल्लाह की धिक्कार है एवं फ़रिश्तों (स्वर्गदूतों) की तथा सब लोगों की।

خَالِدِينَ فِيهَا لَا يُخَفَّفُ عَنْهُمُ الْعَذَابُ وَلَا هُمْ يُنظَرُونَ ﴿٨٨﴾

(८८) वह उसमें नित्य रहेंगे न उनसे यातना हलकी की जायेगी तथा न अवकाश दिया जायेगा।

إِلَّا الَّذِينَ تَابُوا مِن بَعْدِ ذَٰلِكَ وَأَصْلَحُوا فَإِنَّ اللَّهَ غَفُورٌ رَّحِيمٌ ﴿٨٩﴾

(८९) परन्तु जो लोग इसके पश्चात क्षमा याचना एवं सुधार कर लें तो, निश्चय अल्लाह क्षमावान दयावान है।[1]

---

[1]अन्सार में से एक मुसलमान धर्मभ्रष्ट हो गया और मूर्तिपूजकों से जा मिला, परन्तु शीघ्र ही उसे पश्चाताप हुआ और उसने लोगों के द्वारा रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम तक सूचना भिजवायी कि هَل لِي من توبةٍ (क्या मेरी क्षमा स्वीकार हो सकती है) उस पर यह आयत उतरी। इससे ज्ञात हुआ कि मुर्तदद का दण्ड यद्यपि कठोर है, क्योंकि उसने सत्य को पहचान लेने के पश्चात ईर्ष्या, द्वेष एवं द्रोह से सत्यता से मुँह फेरा और इंकार किया। परन्तु यदि कोई स्वच्छ दिल से क्षमा माँगे और अपना सुधार कर ले, तो अल्लाह तआला क्षमा करने वाला और कृपालु है, उसकी पश्चाताप मान्य है।

إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا بَعْدَ إِيمَانِهِمْ ثُمَّ ازْدَادُوا كُفْرًا لَّن تُقْبَلَ تَوْبَتُهُمْ وَأُولَٰئِكَ هُمُ الضَّالُّونَ ﴿٩٠﴾

(९०) नि:संदेह जो लोग अपने ईमान (विश्वास) के पश्चात कुफ़्र (अविश्वास) करें फिर अविश्वास में बढ़ जायें[1] उनकी क्षमा-याचना कदापि स्वीकार न की जायेगी [2] तथा यही कुमार्ग हैं।

إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا وَمَاتُوا وَهُمْ كُفَّارٌ فَلَن يُقْبَلَ مِنْ أَحَدِهِم مِّلْءُ الْأَرْضِ ذَهَبًا وَلَوِ افْتَدَىٰ بِهِ

(९१) नि:संदेह जो लोग क़ाफ़िर हों और मरते समय तक विश्वास रहित रहे उनमें से यदि कोई धरती भर सोना (स्वर्ण) दे यद्यपि प्रतिशोध में हो तो भी कदापि स्वीकार्य न होगा

---

[1]इस आयत में उनके दण्ड का वर्णन हो रहा है, जो मुर्तदद होने के बाद, क्षमा न माँगे तथा इंकार की स्थिति में मर जाये।

[2]इससे वह क्षमा का तात्पर्य है, जो मृत्यु के समय माँगी जाये। वरन् क्षमा का द्वार प्रत्येक व्यक्ति के लिए हर समय खुला हुआ है। इससे पहली आयत में क्षमा की स्वीकृति का वर्णन है। इसके अतिरिक्त क़ुरआन में अल्लाह तआला ने बार-बार क्षमा के महत्व तथा स्वीकार किये जाने का वर्णन किया है।

अल्लाह तआला ने फ़रमाया :

و هو الذي يقبل التوبة عن عباده

"वह (अल्लाह) ही है जो अपने भक्तों की क्षमा स्वीकार करता है।"

(अश-शूरा-२५)

ألم يعلموا ان الله هو يقبل التوبة عن عباده

"क्या उन्होंने नहीं जाना कि अल्लाह ही अपने भक्तों की क्षमा स्वीकार करता है।" (अत्तौबा-१०४)

इन्हीं के लिए दुखद यातना है और उनका कोई सहायक नहीं ।[1]	أُولَٰئِكَ لَهُمْ عَذَابٌ أَلِيمٌ وَمَا لَهُم مِّن نَّاصِرِينَ ﴿٩١﴾

[1]हदीस में आता है कि अल्लाह तआला क़ियामत के दिन एक नरकवासी से कहेगा कि यदि तेरे पास दुनियाँ भर का सामान हो तो क्या तू इस आग की यातना के बदले देना पसन्द करेगा ? वह कहेगा 'हाँ' अल्लाह तआला फ़रमायेगा कि दुनियाँ में मैंने तो इससे सरल बात की माँग की थी कि मेरे साथ किसी को सम्मिलित न करना, परन्तु तू सम्मिलित करने से नहीं रूका । (मुसनद अहमद, अल-बुख़ारी और मुस्लिम व इब्ने कसीर) इससे ज्ञात हुआ कि काफ़िर के लिए नरक की स्थायी यातना है। दुनियाँ में यदि उसने कोई पुण्य का कार्य किया तो अविश्वास के कारण वह भी व्यर्थ हो गया। जैसाकि हदीस में है कि अब्दुल्लाह बिन जदआन के विषय में पूछा गया कि वह अतिथियों का स्वागत करता, गरीबों की सहायता करता था और बन्धुआ लोगों को आज़ाद करता था, क्या उसके यह कर्म उनके लिए हितकारी होंगे ? नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया 'नहीं' क्योंकि उसने एक दिन भी अपने प्रभु से अपने पापों के लिए क्षमा नहीं माँगी (सहीह मुस्लिम, किताबुल ईमान) इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति वहाँ धरती भर सोना किसी बन्दी को मुक्त कराने के लिए मूल्य स्वरूप (फ़िदया कहते हैं) दे और चाहे कि वह नरक की यातना से बच जाये, तो यह सम्भव नहीं होगा प्रथम तो वहाँ किसी के पास होगा क्या ? और यदि मान भी लिया जाये कि उसके पास दुनियाँ भर के कोषों का धन उपलब्ध हो और वह उन्हें देकर यातना से छूट जाये, तो यह भी नहीं होगा। क्योंकि उससे वह प्रतिशोध अथवा फ़िदया स्वीकार ही न किया जायेगा। जिस प्रकार से दूसरे स्थान पर फ़रमाया :

﴿ وَلَا يُقْبَلُ مِنْهَا عَدْلٌ وَلَا تَنفَعُهَا شَفَاعَةٌ ﴾

उससे कोई बदला स्वीकार नहीं किया जायेगा और न कोई सिफ़ारिश उसे लाभ पहुँचायेगी। (*अल-बक़र:-१२३*)

﴿ لَّا بَيْعٌ فِيهِ وَلَا خِلَالٌ ﴾

"वहाँ न क्रय-विक्रय होगा न कोई मित्रता ।" (*सूर: इब्राहीम-३१*)